चन्दामामा
अगस्त १९६४
60
NP

जीवन यात्रा के पथ पर शक्ति की आवश्यकता है।

इनको लाल-शर पिलाइये
(डाबर बालामृत)

डाबर (डा० एस० के० बर्मन) प्राइवेट लि० कलकत्ता-२६

चन्दामामा

अगस्त १९६४

★

विषय - सूची

★

एक प्रति ६० नये पैसे — वार्षिक चन्दा रु. ७-२०

निवेदन

मद्रास में १५ जून से ४ जुलाई तक बिजली के सप्लाय में भारी कमी होने के कारण चन्दामामा के प्रकाशन में कई दिनों का विलम्ब हुआ।

यद्यपि इस विषय में हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं तो भी इस कारण जो असुविधा हमारे एजन्टों और पाठकों को हुई है उसके लिए क्षमा चाहते हैं।

—प्रकाशक

दिलीप और साथी
पिकनिक में गये !
इस बार की पिकनिक का जवाब नहीं, मज़ा आ गया !
हाँ, यह आईसक्रीम चख कर तो देखो, कितना अच्छा है !
अरे हाँ, अब तो घर लौटने का समय हो गया !
स्कूल बस
हु-ऊ-श ! अरे पहिये से हवा गायब ! पंक्चर !
अब क्या होगा ?
तुम्हें घर तक छोड़ने में तो अब काफी समय लगनेवाला है । इस धुंधली रोशनी में तो कुछ देखना भी मुश्किल है ।
फ़िक्र मत करो ड्राइवर साहब ! हमारे 'एवरेडी' टॉर्च से काम लीजिये !
वाह ! वाह !
चलो, पंक्चर तो बन गया आखिर ! दिलीप, तुम्हें बहुत-बहुत शुक्रिया ! चलो, चलो !
ड्राइवर को हमेशा 'एवरेडी' टॉर्च अपने पास रखना ही चाहिये !

चन्दामामा
संचालक: चक्रपाणी
चन्दामामा में प्रकाशित धारावाहिक प्रायः काफी लोकप्रिय रहे हैं।
हमने आजकल एक और धारावाहिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया है, "दुर्गेशनन्दिनी"। यह स्व. बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा लिखित है। वे भारत के महान उपन्यासकारों में मुख्य हैं।
हम आशा करते हैं, इससे हमारे पाठकों का मनोरंजन होगा।
वर्ष : १५ अगस्त १९६४ अंक : १२
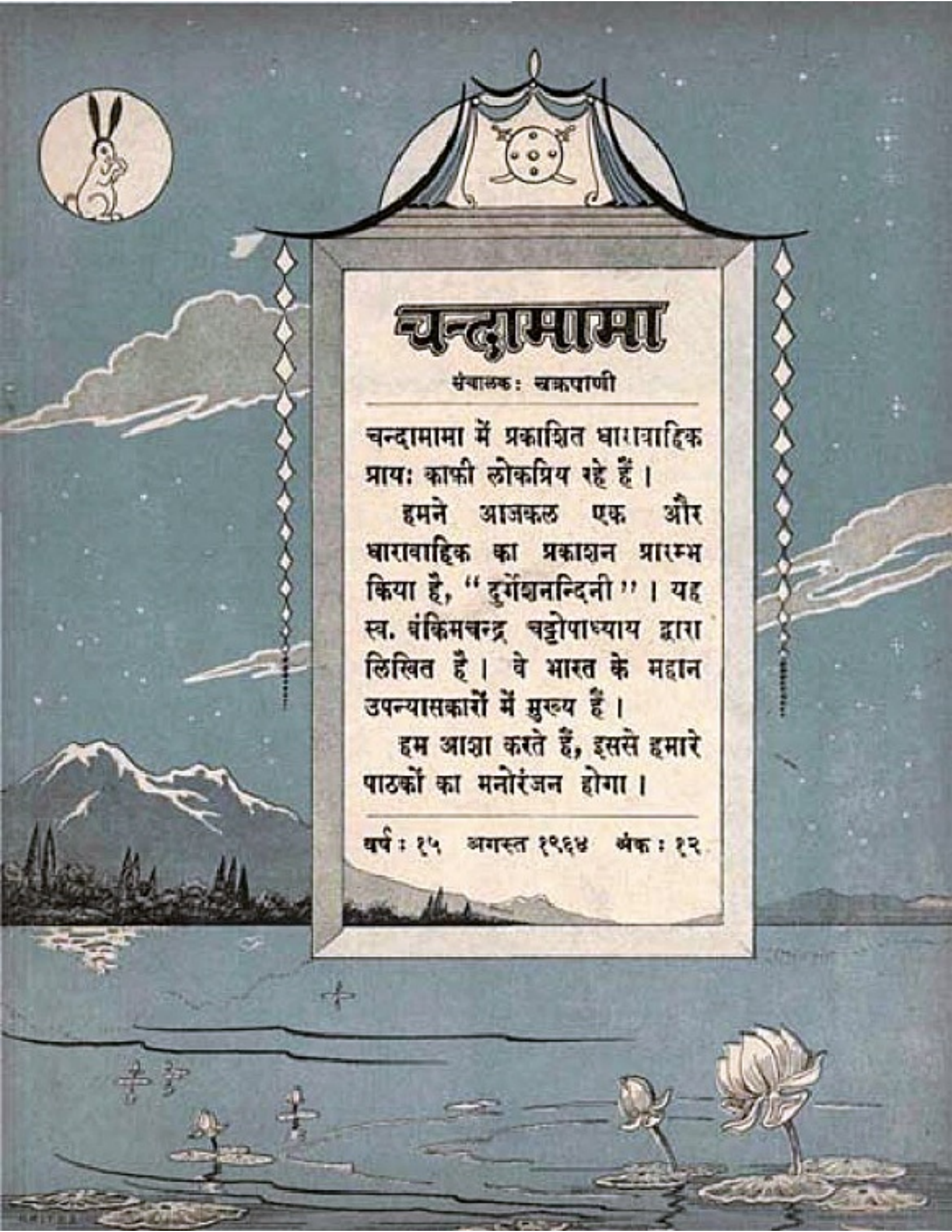
भारत का इतिहास

द्वितीय देवराय १४४६ में मर गया। उसका बड़ा लड़का मल्लिकार्जुन गद्दी पर आया। उसने बहमनी सुल्तानों और उड़ीसा के हिन्दु राजाओं के सम्मिलित आक्रमण का मुकाबला किया। १४६५ तक उसका शासन चलता रहा, इस काल में विजयनगर पर कोई आपत्ति नहीं आयी। इसी के समय में ही चन्द्रगिरि का राजा साल्व नरसिंह राजा प्रख्यात हुआ। इसके पूर्वज विजयनगर सम्राटों के सामन्त थे।

मल्लिकार्जुन के बाद का राजा, विरूपाक्ष असमर्थ था। इसलिए उसके राज्य में अराजकता फैलने लगी। इस कारण, बहमनी सुल्तानों ने कृष्णा और तुंगभद्रा के मध्य के प्रान्त पर आक्रमण किया। उड़ीसा के राजा पुरुषोत्तम गजपति तिरुवन्नामलै तक चला आया। कई प्रान्तों में विद्रोह हुआ।

इस दुस्थिति का निवारण करने के लिए साल्व नरसिंह १४७६ में राजा को हटा कर, स्वयं राजसिंहासन पर आसीन हो गया। इस तरह संगमवंश का शासन समाप्त हुआ और विजयनगर में, साल्व वंश का शासन प्रारम्भ हुआ। साल्व नरसिंह को प्रजा का समर्थन भी मिला। अपने छः वर्ष के राज्य में कई विद्रोहियों को शान्त किया। रायचूर प्रान्त बहमनियों के पास और उदयगिरि का ईलाका उत्कल राजा के पास ही रह गया।

तुलव देश के राजाओं का वंशज नरसनायक साल्व नरसिंह का सेनापति था। यह बड़ा विश्वासपात्र था। नरसिंह ने, अपने बाद राज्यभार नरसनायक को सौंपा।

नरसनायक ने स्वयं राज्य कार्य निभाते, साल्व नरसिंह के लड़के द्वितीय नरसिंह को सिंहासन पर आरूढ़ कर अपनी स्वामी भक्ति दिखाई।

१५०५ में जब नरसनायक मर गया, तो उसके लड़के वीर नरसिंह ने, साल्व वंश के राजा का राज्य भ्रष्ट कर दिया और स्वयं राजा बन गया। विजयनगर का शासन पूर्णतः तुलुव वंश के हाथ में आ गया।

वीर नरसिंह के बाद, उसका भाई कृष्णदेवराय गद्दी पर आया। यह विजयनगर के राजाओं में ही केवल अधिक श्रेष्ठ न था, अपितु भारत के इतिहास के प्रख्यात राजाओं में भी एक है। वह वीर और युद्ध कुशल था। उसने अपना सारा जीवन युद्धों में बिताया। पर कभी उसने हार न देखी। पहिले उसने अपने राज्य के विद्रोहियों को शान्त किया। फिर उसने उत्तर में अपने विरोधियों पर आक्रमण करने का निश्चय किया। १५११-१२ में दक्षिण मैसूर के उम्मत्तूर का विद्रोह शान्त किया गया। १५१२ में, कृष्णदेवराय ने बीजापुर की सीमा के रायचूर को जीता। उसका मुस्लिम राज्य पर हमला करने का इरादा तो था, पर अपने मन्त्री और सेनापति, साल्व तिम्मप्पा के कहने पर उसने हमला न किया।

१५१३ में कृष्णदेवराय ने उड़ीसा के गजपति प्रतापरुद्र पर हमला किया। संगम वंश के समय में ही विजयनगर के कुछ प्रान्तों में प्रतापरुद्र के पूर्वजों ने अपने वश में कर लिया था। उनको पुनः प्राप्त करने के लिए यह आक्रमण किया गया था। १५१४ के प्रारम्भ में उदयगिरि पर कब्जा किया गया। उड़ीसा राजा को गोलकोन्ड

सुल्तान और बीदर सुल्तान ने सहायता की, पर कोई फायदा नहीं हुआ। अगले वर्ष कोण्डवीड दुर्ग और आसपास के छोटे मोटे किले उसके हाथ में आ गये। उड़ीसा का युवराज वीरभद्र आदि कृष्णदेवराय द्वारा बन्दी बना लिये गये। वीरभद्र को एक प्रान्त का अधिपति बनाकर, कृष्णदेवराय ने कुशल राजनीति का परिचय दिया।

उड़ीसा पर तीसरा आक्रमण करते समय कृष्णदेवराय ने बेजवाड़ा (विजयवाडा) के पास पड़ाव करके, कोन्डपल्ली किले को घेर लिया। उड़ीसा राजा की पत्नी, लड़का (वीरभद्र) इस समय पकड़े गये। वहाँ से कृष्णदेवराय सिंहाचल तक गया। वहाँ उड़ीसा राजा को उससे सन्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

कृष्णदेवराय की अन्तिम महत्त्वपूर्ण विजय, रायचूर के पास थी—रायचूर को फिर से पाने के लिए इस्माईल आदिल शा ने कोशिश की। १५२० में कृष्णदेवराय ने परास्त किया। कहा जाता है कि उस समय सारे बीजापुर राज्य पर हमला हुआ था और गुल्बर्गा का दुर्ग भी धराशायी हो गया था।

कृष्णदेवराय ने अपनी विजयों से उत्तर प्रान्त के राजाओं को काबू में रखा। उसने अपने साम्राज्य को पश्चिम कोंकण तक, पूर्व में विशाखपट्टनं तक, दक्षिण में समुद्र तक विस्तृत किया। हिन्दू महासमुद्र के कुछ प्रान्त और द्वीप भी उसके साम्राज्य के अन्तर्गत थे। कृष्णदेवराय ने अपने अन्तिम दिन शान्तिपूर्ण शासन में बिताये।

प्रह्लाद

[२]

हिरण्यकश्यपु की आज्ञा पर भयंकर राक्षसों ने प्रह्लाद को भालों से भोंका। बड़े बड़े हाथियों से उसे रौंदवाया। साँपों से कटवाया। पहाड़ों पर से गिरवाया। क्रित्रिम बिजलियाँ भी उस पर फेंकी गई। ज़मीन में गाड़ दिया, ज़हर दिया गया, पर प्रह्लाद टस से मस नहीं हुआ। ऐसा लगता था, जो वर ब्रह्मा ने हिरण्यकश्यपु को दिये थे, उनका लाभ प्रह्लाद को मिल रहा हो। अपने प्रयत्नों को विफल होता देख, हिरण्यकश्यपु के मन में एक विचित्र भय घर करने लगा। होने को तो वह बच्चा ही था, पर प्रह्लाद में कोई विचित्र शक्ति थी। उसे भय भी न था। उसे सन्देह होने लगा कि कहीं उसका सताया जाना, उसकी अपनी मौत का कारण न हो जाये। सिर झुकाकर, चिन्तित हो हिरण्यकश्यपु जब बैठा था, तो चण्ड और अपर्क उसके पास आये। उन्होंने कहा—"आप जैसों को जिन्होंने तीनों लोक जीते हैं, क्यों चिन्ता सता रही है? छोटे बच्चे गुण-दोष नहीं जानते। इसलिए प्रह्लाद के बारे में सोचने से कोई फायदा नहीं है। शुक्राचार्य जब आयेंगे, तो उनके प्रभाव से बच्चे की बुद्धि बदली जा सकती है।"

"खैर, अब उसे तुम लोग, राजधर्म गार्हस्थ्य धर्म आदि सिखाते रहो।" हिरण्यकश्यपु ने चण्ड और अपर्क से कहा। वे फिर प्रह्लाद को पहिले की तरह पढ़ाने लगे। पर प्रह्लाद को जिसको पहिले

तत्वज्ञान होने लगा था, यह शिक्षा बिल्कुल पसन्द न आयी। जब और विद्यार्थी उसे खेलने कूदने बुलाया करते, तो वह उनको भी तत्वबोध किया करता, एक भगवान ही सत्य हैं, शेष सब कष्ट देनेवाले भ्रम हैं। मैंने यह उपदेश नारद को तब देते सुना था, जब मैं अपनी माता के गर्भ में था। उसके प्रभाव में शेष राक्षस बच्चे भी हरि ध्यान में लग गये। यह देख चण्ड और अपर्क घबराये, उन्होंने जाकर हिरण्यकश्यपु से प्रह्लाद की शिकायत्त की। हिरण्यकश्यपु ने स्वयं अपने लड़के को मारने का निश्चय किया। उसने प्रह्लाद को बुलवाया। वह आकर, हाथ जोड़कर, उसके सामने विनय पूर्वक खड़ा हो गया। हिरण्यकश्यपु ने उससे कहा—"नीच कहीं का। क्या देखकर मेरी आज्ञा का धिक्कार कर रहे हो! मेरी आज्ञा पर तीनों लोक काँपते हैं।"

"महाराज! क्या तुम, क्या मैं, सबका बल परमात्मा है। तुम राक्षस प्रवृत्तियाँ छोड़कर सात्विक बनो। अन्तर शत्रु, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि को जीते बगैर ही तीनों लोकों को जीतने का प्रयत्न करने का कोई मतलब नहीं है।"
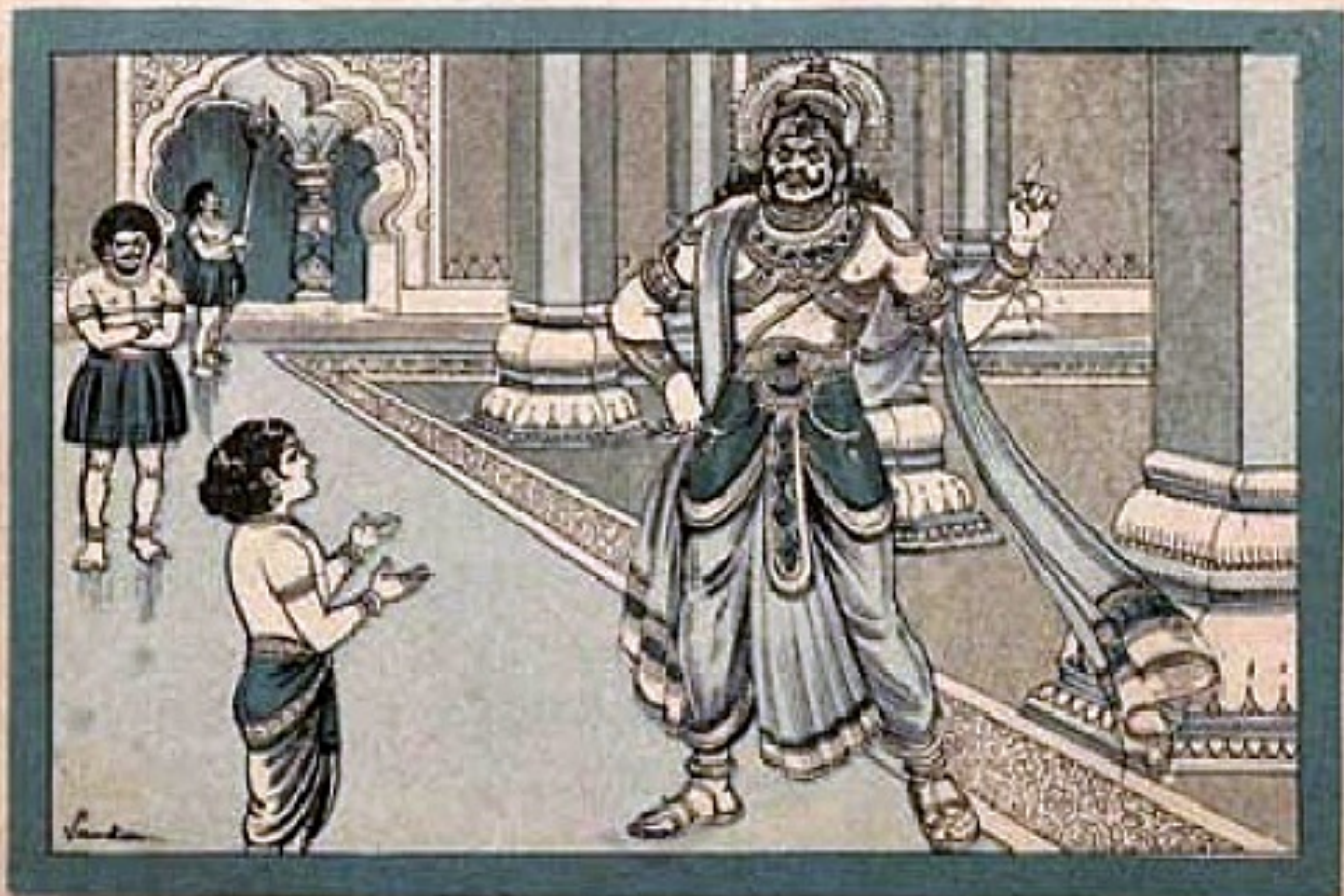
प्रह्लाद ने जवाब दिया। "मूढ़ कहीं का। तुम्हारी भी क्या अक्ल है! कहते हो कि मेरे सिवाय एक और लोकेश्वर है, बताओ, वह कहाँ है!" हिरण्यकश्यपु ने पूछा।

प्रह्लाद ने कहा कि लोकेश्वर सर्वत्र व्याप्त है। "तो इस स्तम्भ में क्यों नहीं दिखाई देता!" हिरण्यकश्यपु, तल्वार लेकर प्रह्लाद को मारने के लिए सिंहासन से उतरा उसने स्तम्भ पर ज़ोर से मुक्का मारा।

तुरन्त इस तरह की भयंकर ध्वनि हुई मानों भूमि और आकाश फूट पड़े हों। यह ब्रह्मा आदि ने भी सुनी, पर हिरण्यकश्यपु ने नहीं सुनी। लड़के को किस तरह मारा जाय, यह सोचता, वह इधर उधर चहलकदमी करने लगा।

इतने में, उस स्तम्भ से एक भयंकर आकृति निकलती दिखाई दी। न वह पशु था। न मनुष्य ही। उसके भयंकर दान्त थे और तल्वार की तरह जीभ। पीली-पीली आँखें, क्रूरता से भरी, खूब चमक रही थीं। गले पर लम्बे-लम्बे बाल थे। शरीर पर भी बाल थे। नाखून शस्त्रों की तरह थे। हिरण्यकश्यपु को मारने के लिए महाविष्णु ने यह नृसिंहवतार लिया था।

"मायावी विष्णु, मुझे मारने के लिए शायद इस रूप में आया है। पर वह मेरा क्या बिगाड़ सकता है!" सोचकर हिरण्यकश्यपु अपनी गदा लेकर, गरजता, नृसिंह की ओर लपका। नृसिंह ने उसको इस तरह पकड़ा जिस तरह कि गरुड ने सांप को पकड़ा था। परन्तु हिरण्यकश्यपु, उसके हाथ से उसी तरह खिसक गया, जिस तरह सांप खिसक गया था। खिसक कर, हिरण्यकश्यपु, यह सोचकर कि वह उसके बल को देखकर भयभीत था, तलवार और ढ़ाल लेकर उससे लड़ने निकला। उसने नृसिंह को पकड़ा पर उसके प्रकाश में हिरण्यकश्यपु कुछ भी न देख पाया। उसने आँखें मूँदकर भाग जाना चाहा। पर वह भाग न सका।

नृसिंह ने हिरण्यकश्यपु को, सन्ध्या समय में, जब न दिन था, न रात ही, अपनी जाँघों पर बिठाकर, अपने नाखूनों से, उसका पेट फाड़कर उसको मार दिया। कुछ राक्षसों ने हथियार लेकर, उस पर हमला किया, तो उसने उनको भी मार दिया। जब उसका कोई मुकाबला करनेवाला न रहा, स्वयं सिंहासन पर बैठ गया। उसका अवतार बड़ा भयंकर था। वहाँ ब्रह्मा आदि देवता आये। हिरण्यकश्यपु को, जो तीनों लोकों का कंटक-सा था। मारने पर उसको बधाई दी। उसकी स्तुति की। पर उसमें सात्विकता न आयी। तब ब्रह्मा ने प्रह्लाद को बुलाकर, नृसिंह को शान्त करवाया।

प्रह्लाद, पिता का दहन संस्कार करके, स्वयं राज्य करने लगा। [अभी है]

[२]

[राजा मानसिंह का लड़का जगतसिंह विष्णुपुर से मन्धारण के मार्ग में, घोड़े पर सवार हो, जब अकेला जा रहा था, तो वह तूफान में फंस गया। वह अन्धेरे में शैलेश्वरालय पहुँचा। वहाँ एक कुलीन युवती और उसकी परिचारिका विमला से उसका परिचय हुआ। उस युवती पर उसको प्रेम हो गया। उसने उन स्त्रियों को तो बता दिया कि वह कौन था। पर वह उनसे न जान सका कि वे कौन थीं। जब विमला ने वचन दिया कि यदि वह ठीक पन्द्रह दिन बाद वहाँ आया तो वह युवती का वृत्तान्त बता देगी, तो दोनों अपने अपने रास्ते चले गये।]

जगतसिंह वंगदेश क्यों आया था, उस प्रान्त में क्यों अकेला घूम रहा था, यह जानने के लिए उस समय के वंगदेश की राजनैतिक परिस्थिति के बारे में कुछ जानना होगा।

वंगदेश में, बख्तियार खिल्जी ने इस्लाम की जय पताका फहराई। उसके बाद मुसलमानों का शासन बहुत समय तक निर्विघ्न चलता रहा। परन्तु दाऊदखान ने अपनी बेवकूफी से अकबर को यों उकसाया

श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

ऐसी व्यवस्था की कि उसके कारण बंगदेश के जागीरदार, ज़मीन्दार ही बिगड़ उठे। उनमें असन्तोष फैला। वे विद्रोह करने के लिए तैयार हो गये।

उरीसा के पठानों को जो मौके की तलाश में थे अच्छा मौका मिला, कतलूखान नामक व्यक्ति ने विद्रोह का नेतृत्व किया। मिदनापुर उसके आधीन आ गया। अकबर शक्तिशाली था और बुद्धिमान भी। उसने शासन के लिए राजपूतों को ही चुना था। उनमें मानसिंह मुख्य था। यह मानसिंह ही अकबर द्वारा बंग और बिहार देश का शासनाधिकारी नियुक्त किया गया।

मानसिंह पटना आया। वहाँ की परिस्थिति सुधार कर उत्कल देश को जीतने के लिए जब निकला, तो उसने सैय्यदखान को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। बाद में, देश को जीतने जब वह बर्धवान नगर की ओर निकला, तो उसने सैय्यदखान को खबर भेजी कि वह सेना के साथ उसे वहाँ मिले। परन्तु सैय्यदखान ने मानसिंह को दूतों द्वारा खबर भिजवाई कि सेना को जमा करने के लिए समय लगेगा और उस बीच वर्षा आ जायेगी

जैसे शेर को थपथपाकर भड़काया हो और युद्ध मोल ले बैठा। अकबर के सेनापति मुनव्वरखान ने उसको हराकर राज्यभ्रष्ट किया। दाऊदखान बंगदेश को मुगलों को सौंप, सिर छुपाने के लिए सकुटुम्ब उरीसा भाग गया। इस प्रकार उत्कल देश में पठान जम गये और उनको वहाँ से हटाना मुगलों के लिए मुश्किल हो गया, पर आखिर जैसे भी हो, उन्होंने उत्कल को वश में कर लिया।

पर इस बीच एक और उपद्रव मचा। बंगदेश में कर वसूलने के लिए अकबर ने

इसलिए वह वर्षा ऋतु के बाद ही उससे मिल सकेगा। मानसिंह भी क्या कर सकता था। दारूकेश्वर के पास उसने छावनी डाली और वहाँ सैय्यदखान के आने की प्रतीक्षा करता रहा।

सैय्यदखान को न आता देख, कतलुखान ने अपने हमले बढ़ा दिये। वह मन्धारण प्रान्त में अपनी सेना के साथ आया और आस पास के प्रान्त को लूटने लगा।

यह सुन मानसिंह को चिन्ता हुई। उसने सोचा कि शत्रु की शक्ति आँकने के लिए किसी को भेजा जाना चाहिए। उसका लड़का जगतसिंह, जो उसके साथ था इस काम के लिए तैय्यार भी हो गया। मानसिंह ने उसको सौ घुड़सवारों के साथ भेजा। जगतसिंह ने जल्दी ही शत्रु का पता लगा लिया। वह अपना काम समाप्त करके जब पिता के पास वापिस आ रहा था तो उसने शैलेश्वर के मन्दिर में उन स्त्रियों को देखा था।

जगतसिंह शैलेश्वर मन्दिर से निकलकर, अपनी छावनी में पहुँचा। वहाँ उसने अपने पिता मानसिंह महाराजा को पठानों के बारे में ये विवरण दिये।

"धरपुर ग्राम के पास ही पठानों ने अपनी छावनी बनाई है। वहाँ पचास हज़ार सैनिक हैं। वे वहाँ के आस पास के गाँवों को लूट रहे हैं। जहाँ तहाँ किले बना कर, वे मनमानी अपना शासन कर रहे हैं।" पठानों के आक्रमण को रोकने के लिए मानसिंह ने अपने सैनिक अधिकारियों की एक सभा बुलवायी और उनसे इस प्रकार कहा।

"ग्राम के बाद ग्राम, परगणा के बाद परगणा दिल्ली के बादशाह की सल्तनत से खिसकते आ रहे हैं। जैसे भी हो मैं

पठानों के दबे दबे को रोकना चाहता हूँ! उनसे मुकाबला करके उनको किलों से भगाने की ताकत हम में नहीं है। जब तक सैय्यदखान न आ जाये तब तक युद्ध का निश्चय करना ठीक नहीं है। इस बीच एक कुशल सेनापति को भेजकर, पठानों को काबू में रखना ठीक रहेगा।"

यह काम करने के लिए भी जगतसिंह मान गया। उसने प्रतिज्ञा की कि दस हज़ार सेना के साथ, वह जायेगा और कतलखान को सुबर्णरेखा नदी के परली पार भगा देगा।

जगतसिंह विष्णुपुर से जहानाबाद गया। उस रास्ते के दक्षिण में मन्धारण था। जिन स्त्रियों से, जगतसिंह मन्दिर में मिला था, उसी नगर की थीं।

दामोदर नदी उस नगर के पास से बहा करती थी। जहाँ वह नदी मुड़ती थी वहाँ तिकोनी जगह पर एक किला बना हुआ था। नदी उस किले के दोनों तरफ बहती थी। वह किला, जपधरसिंह नाम के हिन्दू योद्धा को जागीर में मिली थी। इस कहानी के समय में वह किला जपधरसिंह के उत्तराधिकारी बीरेन्द्रसिंह के हाथ में था।

बीरेन्द्रसिंह जब युवक था, तो उसकी और उसके पिता की एक क्षण नहीं पटती थी। पिता ने बीरेन्द्रसिंह के लिए एक कन्या चुनी। वह भी एक ज़मीन्दार की लड़की थी। बड़ी सुन्दर थी। वह अपने माँ बाप की इकलौती थी। परन्तु बीरेन्द्रसिंह ने उससे विवाह न करके एक अनाथ स्त्री से विवाह कर लिया।

बूढ़े ज़मीन्दार को यह देख गुस्सा आ गया। उसने अपने लड़के को घर से निकाल दिया। युवक बीरेन्द्रसिंह सैनिक

वृत्ति अपनाने के लिए दिल्ली गया। चूँकि उस समय उसकी पत्नी गर्भवती थी इसलिए वह उसको अपने साथ नहीं ले गया और उसे उसकी माता के पास छोड़ता गया।

लड़के को घर से भेजने के बाद बूढ़ा जमीन्दार पुत्र के वियोग के कारण दुखी रहने लगा। उसने बहुत कोशिश की पर उसे पुत्र का पता न लगा। इसलिए वह अपनी बहु को उसके मायके से अपनी घर ले आया। उसने एक लड़की को जन्म दिया और उसके कुछ दिनों बाद वह मर गई।

बीरेन्द्रसिंह दिल्ली के बादशाह की अनुमति पर, राजपूतों की सेना में भरती हो गया। जल्दी ही उसने पैसा और यश भी कमा लिया। कुछ दिनों बाद, वह पिता की मृत्यु की वार्ता सुनकर, अपने घर वापिस आते आते, दिल्ली से अपने साथ बिमला नाम की स्त्री और अभिरामस्वामी नाम का सन्यासी साथ लाया।

बिमला घर का काम काज देखा करती, विशेषत: बीरेन्द्रसिंह की लड़की की देखभाल किया करती। यद्यपि वह सब काम किया करती थी, तो भी उसे कोई नौकरानी की तरह न देखता था। उसका घर की
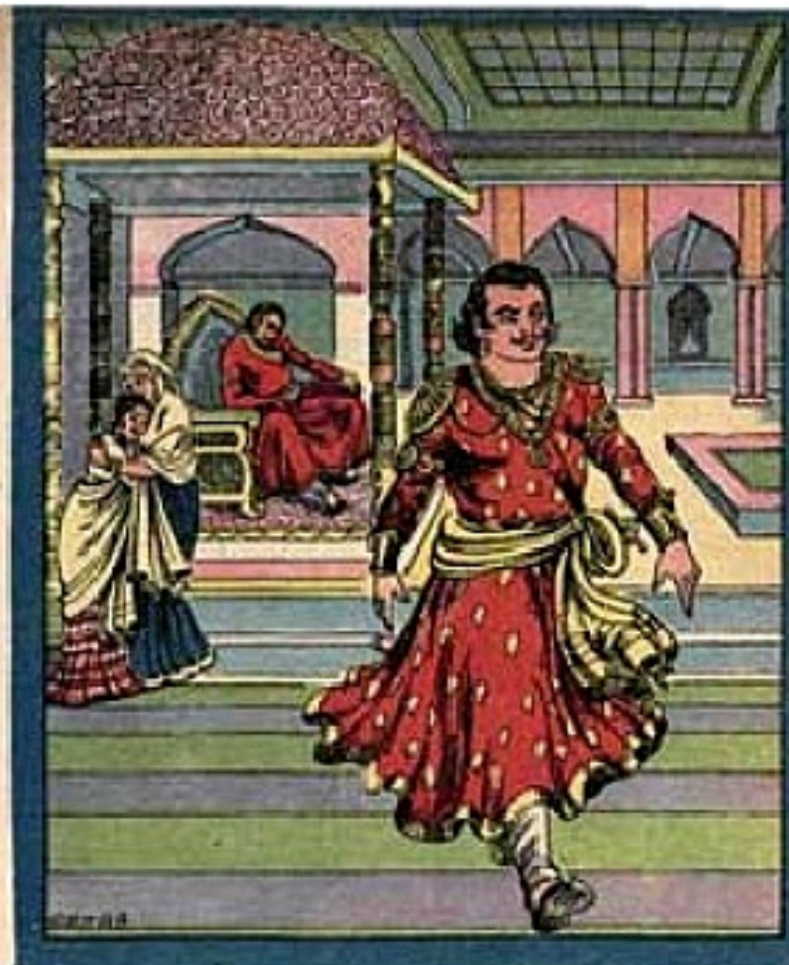
स्त्री की तरह आदर होता। उम्र बड़ी हो गई थी, परन्तु वह बहुत सुन्दर थी। उसे देखकर लगता था कि वह जवानी में बहुत सुन्दर रही होगी।

उसके हाव-भाव, वाक्पटुता आदि देखकर, लगता था कि वह अच्छे कुटुम्ब में पैदा हुई थी।

बीरेन्द्र के साथ जो सन्यासी आया था, वह हमेशा किले में नहीं रहा करता था। यदि दो तीन महीने मन्धारण किले में रहता, तो बाकी महीने इधर उधर घूमता रहता। सब कोई कहा करता कि

अभिरामस्वामी वीरेन्द्र का गुरु था, वे दोनों एक दूसरे का आदर किया करते। हर काम वीरेन्द्रसिंह अभिरामस्वामी की सलाह पर किया करता। विमला और अभिरामस्वामी के अलावा, अस्मानी नाम की एक दासी भी दिल्ली से वीरेन्द्रसिंह के साथ आयी थी।

तिलोत्तमा और विमला, जब शैलेन्द्र मन्दिर से मन्दारण आये, तो दो-तीन दिन बाद एक दिन, जब वीरेन्द्रसिंह अपने सभा भवन में बैठा था, तो अभिरामस्वामी वहाँ आया। वीरेन्द्र ने गौरवपूर्वक उनको खड़े होकर नमस्कार किया। फिर वहाँ दर्भासन दिलाया।

जब दोनों अपने अपने आसनों पर बैठ गये, तो अभिरामस्वामी ने कहा—"पठानों और मुगलों में भयंकर युद्ध होनेवाला है। इस बारे में तुम क्या करने की सोच रहे हो!"

"शत्रुओं को मैं अपने बाहुबल से परास्त करूँगा।" वीरेन्द्र ने कहा।

"वीर को जो कहना चाहिए था, वही तुमने कहा। पर तुम्हारे पास हज़ार आदमियों की ही तो सेना है। लाख आदमियों की सेना को कैसे परास्त करोगे! उस तरफ़ मुगल और इस तरफ़ पठान दोनों ही बलवान हैं। जब तक उनमें से एक पक्ष, तुम्हारी सहायता नहीं करता, तब तक तुम्हारा काम नहीं बनेगा। दोनों पक्षों का शत्रु होने की अपेक्षा, तो यह ही अच्छा है कि एक पक्ष को अपनी ओर कर लो।" अभिरामस्वामी ने कहा।

"किस ओर मैं शामिल होऊँ! आपकी क्या आज्ञा है!" वीरेन्द्र ने पूछा।

"यतो धर्मः स्ततो जयः। जिस तरफ़ धर्म हो। उस तरफ़ जाओ। राजद्रोह

महापाप है, इसलिए राजा का पक्ष लो।" अभिरामस्वामी ने कहा।

"कौन है राजा? मुगल और पठान, राज्य के लिए ही तो लड़ रहे हैं।" बीरेन्द्र ने पूछा।

"कर्मशील अकबर बादशाह ही राजा है।" अभिरामस्वामी ने कहा।

यह सुनते ही बीरेन्द्र के मुँह पर क्रोध और खीझ दिखाई देने लगी। आँखें लाल हो गईं। उसने अभिरामस्वामी से कहा—"स्वामी, यदि आपका आशीर्वाद मिले, तो मानसिंह के रक्त से अपने हाथ धोना चाहूँगा।"

"मैंने बादशाह का साथ देने के लिए कहा है न कि मानसिंह का, ज़रा शान्ति रखो। गुस्से में अपनी हानि न करो। मानसिंह से जिसने तुम्हारा अपकार किया है ज़रूर बदला लो। परन्तु अकबर की तरफ़ से युद्ध करने में तुम्हारा क्या उद्देश्य है?" अभिरामस्वामी ने कहा।

अकबर की तरफ़ से लड़ने के लिए यदि उसे मानसिंह के नीचे रहना पड़ा, तो बीरेन्द्रसिंह ने कहा कि वह उसे मँजूर न होगा। उसने यह भी कहा कि वह पठानों के साथ मिलना चाहेगा। यह सुन अभिरामस्वामी की आँखों से आँसू निकलने लगे। यह देख, घबराता बीरेन्द्रसिंह अपने आसन से उठा। उससे माँफी माँगी। उससे पूछा कि क्या किया जाये, वे आज्ञा दें।

अभिरामस्वामी ने अपने शाल से आँसू पोंछते हुए कहा—"मुझे तुम से अधिक तुम्हारी लड़की पर अभिमान है। कुछ दिन पहिले मैंने उसकी जन्म कुंडली देखी थी। मुगलों के सेनापति के कारण उस पर बड़ी आपत्ति आनेवाली है। मुगलों

को मित्र बनाने से वह आपत्ति टल सकती है। इसलिए मैं तुम्हें उसकी ओर जाने के लिए कह रहा हूँ। तुम्हारी लड़की की बात कहकर तुम्हें कष्ट देना मेरा उद्देश्य नहीं है। शायद इस ख्याल में कि उसपर आपत्ति नहीं आयेगी, इसलिए ही पठानों की तरफ़ से लड़ने के लिए तुमने निश्चय कर लिया है।"

उसने उठकर जाते हुए कहा—"द्वार पर कतलखान का दूत इन्तज़ार कर रहा है। द्वारपाल को मैंने उसे रोके रखने के लिए कहा है। जो कुछ मुझे कहना था, चूँकि मैंने कह दिया है। इसलिए दूत को यहाँ बुलाकर, उसको उचित उत्तर देकर भेज दो।"

"स्वामी, मैंने अपना उद्देश्य बदल लिया है। मानसिंह के नीचे भी काम करने के लिए तैयार हूँ। उस दूत को भेजने के लिए द्वारपालक से कहिये।" वीरेन्द्रसिंह ने कहा।

थोड़ी देर में कतलखान के दूत ने वीरेन्द्रसिंह को एक चिट्ठी लाकर दी। उसमें यह लिखा था—

"वीरसिंह, हज़ार घुड़सवार और पाँच हज़ार सोने की मुहरें पठानों की छावनी में भेजो। नहीं, तो मेरे बीस हज़ार सैनिक मन्धारण किले पर हमला कर सकते हैं। कतलखान।"

वीरेन्द्रसिंह ने पत्र पढ़कर, दूत से कहा—"तुम अपने मालिक से कहो कि सेना भेज दूँगा।" दूत बाहर चला गया।

उस सभा में जो संभाषण हुआ था, उसे विमला आड़ में से सुन रही थी।

[अभी है]

अस्थिपंजर

विक्रमार्क ने हठ न छोड़ा। पेड़ के पास जाकर पेड़ पर से शव को उतारकर कन्धे पर डाल हमेशा की तरह श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजा, यदि तुम अपूर्व शक्ति पाने के लिए इतने कष्ट उठा रहे हो, तो ये प्रयत्न छोड़ना अच्छा है। चूँकि ये अपूर्व शक्तियाँ कई बार जरूरत पड़ने पर काम नहीं आतीं और उनकी वजह से खतरा आ पड़ता है। यह दिखाने् के लिए श्रुतवर्मा की कहानी सुनाता हूँ, सुनो।" उसने यों कहानी सुनानी शुरु की।

पहिले कान्यकुब्ज देश में कृतवर्मा और श्रुतवर्मा नाम के दो मित्र रहा करते थे। वे दोनों बचपन के मित्र थे। पर उन दोनों के स्वभाव भिन्न थे। कृतवर्मा कार्यकुशल और समर्थ व्यक्ति था। और

तीन वर्ष बीत गये। कृतवर्मा ने पैसा कमाकर अपने घर और गाँव जाने की ठानी। उसने श्रुतवर्मा से पूछा—"मैं अपने गाँव वापिस जा रहा हूँ। क्या तुम भी चलोगे!" "मैं भी जाना चाहता हूँ। मुझे यह परदेश पसन्द नहीं है। पर कैसे आऊँ! सफ़र के लिए मेरे पास कानी कौड़ी भी नहीं है। कपड़े तक नहीं हैं।" श्रुतवर्मा ने कहा।

श्रुतवर्मा आलसी। कृतवर्मा परिश्रम करके सफलता पाता और श्रुतवर्मा को पीना और जुआ आदि पसन्द थे। परन्तु जहाँ वह था, उसको वहाँ अधिक मौके न मिले, इसलिए कृतवर्मा ने आजीविका के लिए एक और देश जाने का निश्चय किया। श्रुतवर्मा भी उसके साथ निकला। दोनों नदी, पहाड़ और घाटियाँ पार करके, एक देश में गये। वहाँ कृतवर्मा ने दिन रात काम करके खूब पैसा कमाया। श्रुतवर्मा जुआखोरों, पियक्कड़ों के साथ समय व्यर्थ करता रहा।

शायद इसलिए कि दोनों साथ आये थे, कृतवर्मा को अकेले वापिस जाने को मन नहीं लगा। उसने श्रुतवर्मा के लिए कपड़े खरीदे, यह कह कर, सफ़र का खर्च वह ही उठायेगा, उसे भी वह साथ ले गया।

जब वे अपने देश के पास आ रहे थे, तो निर्जन वन में, एक घाटी में श्रुतवर्मा ने अपने मित्र को मार दिया। उसके शव को रास्ते के बगल में, पौधों में खींच दिया। उसका सारा पैसा ले लिया और अपने गाँव चला गया।

ग्रामवासियों ने कृतवर्मा के बारे में पूछा। श्रुतवर्मा ने उनसे कहा—"उस के बारे में न पूछिये। परदेश में जाते ही वह पूरी तरह बदल गया।

दुस्संगति में रहने लगा। बुरी आदतें पाल लीं। बिल्कुल निर्धन हो गया। सफर के लिए भी पैसा न रहा। इसलिए वह वहीं रह गया।"

श्रुतवर्मा, जिसने कहा था कि कृतवर्मा बिल्कुल बदल गया था, अपने आप बिल्कुल न बदला था; जुये में उसने वह सारा धन खो दिया, जो कृतवर्मा को मारकर हड़पा था। आखिर, उसका गाँव में गुज़ारा होना ही मुश्किल हो गया। वह फिर परदेश के लिए निकल पड़ा।

श्रुतवर्मा, जब उस घाटी में से जा रहा था, जहाँ उसने कृतवर्मा को मारा था, तो उसको ऐसा लगा, जैसे कोई "श्रुत श्रुत" बुला रहा हो। जब पीछे मुड़कर देखा, तो कोई नहीं दिखाई दिया। यह सोच कि भ्रम होगा, श्रुतवर्मा आगे चला गया। परन्तु फिर उसे वही आवाज़ सुनाई दी।

उसने चकित होकर इस बार ध्यान से सुना। वह जान गया कि वह आवाज़ सड़क के पास के पौधों के पास से आ रही थी। जब उसने पौधों के पास जाकर देखा, तो वहाँ एक अस्थिपंजर दिखाई दिया। वह चकित होकर उस अस्थिपंजर की ओर देख रहा था कि उसने कहा—"श्रुत, क्यों मुझे, इतनी जल्दी भूल गये? तीन साल पहिले मुझे मारकर, तुमने मेरा धन हड़प लिया था। मैं कृतवर्मा हूँ। यह सोच कि कभी न कभी तो दीखोगे ही मैं तुम्हारी इन्तज़ार कर रहा था। आज तुम दिखाई दिये। मेरी इच्छा पूरी हो गई। मुझे बड़ी खुशी हो रही है।"

श्रुतवर्मा ने डरकर वहाँ से भागना चाहा। परन्तु अस्थिपंजर ने उसका कपड़ा ज़ोर से पकड़ लिया। उसको जाने नहीं दिया। "कहाँ जा रहे हो?" उसने श्रुतवर्मा से पूछा।

श्रुतवर्मा ने सच कह दिया—"मैं अपने गाँव गया। सारा धन खर्च हो गया। काम की खोज में अब फिर निकला हूँ। मुझे जाने दो, तुम्हारा भला होगा।"

"ओहो....तुम कुछ भी नहीं बदले, हमेशा तुम्हें तंगी रहती है। मैं नृत्य करके तुम्हारे लिए पैसा कमाऊँगा। "बताओ! मुझे एक सन्दूक में रखकर ले जाओ।" खाने पीने के लिए मुझ पर कुछ खर्च न होगा, कपड़े पर भी न खर्चना होगा। इतने कम खर्च पर, इतना ज्यादह रुपया तुम किसी और तरीके से नहीं बना सकते। शायद तुम आश्चर्य कर रहे हो कि क्या मैं नृत्य करूँगा। यह देखो, दिखाता हूँ।" कहते हुए अस्थिपंजर ने तरह तरह के नृत्य किये।

"देखा श्रुत, जो तुम चाहो, गाओ। उसके अनुसार मैं नृत्य करूँगा। कहो! बहुत रुपया कमाया जा सकता है न!" अस्थिपंजर ने कहा।

"हाँ, सचमुच बहुत कुछ रुपया कमाया जा सकता है।" श्रुतवर्मा मान गया और अस्थिपंजर को लेकर निकल पड़ा। गाँव गाँव में वह गाता और अस्थिपंजर को नचवाता। नृत्य करनेवाले अस्थिपंजर की ख्याति जगह जगह फैल गई। आखिर उसकी खबर उस देश के राजा के पास भी पहुँची।

उसने कहा कि जब तक वह अपनी आँखों अस्थिपंजर का नृत्य न देख लेगा, तब तक उसको विश्वास न होगा। उसने श्रुतवर्मा को खबर भेजी और उसने अपने महल में नृत्य की व्यवस्था की, प्रदर्शन देखने बड़े बड़े लोग आये।

परन्तु न मालूम क्यों अस्थिपंजर का नृत्य करना तो क्या वह हिला तक भी

न। श्रुतवर्मा ने बहुत कुछ गाकर देखा। परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। अस्थि पंजर, अस्थि पंजर ही लग रहा था। उसमें कोई विशेषता नहीं दिखाई दी।

श्रुतवर्मा की यदि कोई इज्जत होती, तो वह उस समय चली गई होती। परन्तु राजा का बड़ा अपमान हुआ। उसने गुस्से में कहा—"यह दुष्ट गाँववालों की आँखों में धूल झोंक कर, इस अस्थिपंजर के बहाने बहुत रुपया बना रहा है। इस धोखेबाज ठग को ले जाकर, टुकड़े टुकड़े करके मार दो।" सैनिकों ने उसे ले जाकर मार दिया।

बेताल ने यह कहानी सुना कर कहा—"राजा, मुझे एक सन्देह है। कृतवर्मा का अस्थिपंजर, जो मरकर भी अपने मित्र श्रुतवर्मा की मदद कर रहा था। क्यों नहीं राजा के सामने नाचा? उस अस्थि-पंजर की शक्ति यकायक क्यों चली गई? यदि तुमने इन प्रश्नों का उत्तर जान बूझकर न दिया, तो तुम्हारा सिर टूट जायेगा।"

इस पर विक्रमार्क ने कहा—"कृतवर्मा ने अस्थिपंजर के रूप में, श्रुतवर्मा के लिए इसलिए प्रतिज्ञा न की थी चूँकि उसको उस पर कोई प्रेम था। नृत्य करके श्रुतवर्मा को यश और पैसा इसलिए नहीं दिलवाया था चूँकि वह उसकी सहायता करना चाहता था। उसने यह सब हत्यारे श्रुतवर्मा से बदला लेने के लिए ही किया था। बदला लेने के लिए राजा के सामने अस्थिपंजर नहीं नाचा था। उसकी चाल चल गई। राजा ने श्रुतवर्मा को मरवाकर, कृतवर्मा का बदला निकलवा दिया।"

राजा का इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और फिर पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

फिजूल चाल

एक शहर में जयन्त नाम का बनिया रहा करता था। वह थोड़ा बहुत व्यापार करके जीवन निर्वाह कर रहा था। शादी के उम्र की उसकी एक लड़की थी। उसके लिए एक अच्छा सम्बन्ध तय हुआ। मुहूर्त भी निश्चित हो गया।

विवाह के खर्च के लिए उसके पास जो कुछ पैसा था, जब उसने गिना, तो उसे वह कुछ कम मालूम हुआ। जयन्त ने इसलिए एक हीरे को, जो उसके घर में बहुत दिनों से था, बेचने का निश्चय किया। वह उस हीरे को लेकर, घोड़े पर सवार होकर, राजधानी की ओर निकल पड़ा। उसने राजा के दर्शन किये, अपना काम बताकर, उसने रत्न दिखाया। राजा ने पारखियों को बुलाकर उसकी कीमत तय करवाई। उन्होंने बताया कि उसकी कीमत लाख से कुछ हज़ार ऊपर थी। उनके द्वारा निर्धारित दाम पर राजा वह रत्न खरीदने के लिए तैयार हो गया। परन्तु जयन्त सारा पैसा एक साथ नहीं ले जाना चाहता था। शादी के खर्च के लिए जितने रुपये की ज़रूरत थी, उतना ले लिया और बाकी को सालाना किस्तों में लेने का इन्तज़ाम कर लिया।

नगर की पेंठ में गया, वहाँ उसने एक गौ खरीदी। उसने अपनी लड़की को ससुराल जाते समय, वह गौ भी देने की सोची। गौ के गले की रस्सी को उसने घोड़े की पूँछ से बांध दी, घोड़े पर सवार हो, घोड़े को धीमे-धीमे चलाता, वह घर की ओर निकल पड़ा। गौ के गले की घंटी चलते समय बजती जाती थी।

जयन्त जब एक पहाड़ के पास से गुज़र रहा था, तो गौ की घंटी की ध्वनि में कुछ भेद दिखाई दिया, उसने पीछे मुड़कर देखा। गौ न थी। वह घंटी घोड़े की पूँछ से बंधी थी। उसने ऊँचाई पर चढ़कर चारों ओर देखा। कहीं गौ का पता न था। वह निराश हो भाग्य को कोसने लगा।

जयन्त की कपिल गौ चुरानेवाला गण्ड नाम का चोर था। गण्ड ने जयन्त को कपिल गौ खरीदते देखा था। गौ ही नहीं, गण्ड उसके पैसे, घोड़े और उसके कपड़ों को भी चुराना चाहता था। यह सब काम अकेला नहीं हो सकता था। गण्ड ने केवल गौ चुरा ली और बाकी काम अपने लड़के प्रचण्ड पर छोड़ दिया।

प्रचण्ड जयन्त के रास्ते में, एक नदी के किनारे के पत्थर के पीछे बैठा था, जयन्त को पास आता देख, वह ज़ोर से चिल्लाया और नदी में कूदा। यह सोच कि कोई विचारा नदी में गिर पड़ा था, जयन्त अपने घोड़े से उतरा, पगड़ी, कमीज़ रुपयों की थैली, धोती, एक जगह रखकर, तौलिया बांधकर, गिरे हुए आदमी की रक्षा करने के लिए वह भी नदी में कूदा।

जब वह यों कूदा, तो जयन्त के पैर में कोई रस्सी-सी लगी। जब जयन्त उससे छूटने की कोशिश कर रहा था, तो प्रचण्ड किनारे पर तैरता पहुँचा, उसने एक पत्थर को पानी में धकेला। जयन्त के कपड़े, थैली लेकर घोड़े पर सवार होकर चम्पत हो गया। पत्थर जब पानी में डूबा, तो वह साथ जयन्त को भी ले गया। क्योंकि जो रस्सी, जयन्त के पैर पर थी, उसका दूसरा सिरा पत्थर से बंधा था। यह

प्रचण्ड की ही करतूत थी। जयन्त ने बड़ी मुश्किल से अपने कमरबन्द से चाकू निकाल, पत्थर पर बंधी रस्सी को काटा। किनारे पर आया और बेहोश-सा नीचे गिर गया।

पैसा, कपड़े खोकर, आखिर घोड़ा भी खोकर, जयन्त कहीं नहीं जा सकता था। इतना मजबूर था कि कुछ कर भी नहीं सकता था। किसी के सामने जा भी न सकता था, अन्धेरा होने का समय था। लकड़हारों ने जंगल से जाते उसे देखा, यह भी मालूम किया उसके साथ क्या गुज़री थी। उसको पहिनने के लिए अपना एक कपड़ा दिया और वे उसे अपने घर ले गये। उस दिन रात जयन्त ने उनके साथ ही काट दी। अगले दिन उनके दिये हुए कपड़े पहिनकर, वह राजा के पास गया, जो कुछ गुज़रा था, राजा को बताया और प्रार्थना की कि वह उसे कुछ धन दे।

"पैसा देने में क्या रखा है! अगर सारा पैसा चाहो, तो ले जाओ। परन्तु जब तक चोर पकड़ नहीं लिये जाते, तब तक तुम्हारा यहाँ दो दिन तक रहना ही

अच्छा है।" मन्त्री ने जयन्त को सलाह दी और उसके रहने के लिए अतिथि गृह में व्यवस्था कर दी। उसी दिन मन्त्री ने घोषणा करवायी कि राजा को कपिल गौ की ज़रूरत थी, एक एक गौ के लिए हज़ार हज़ार रुपये दिये जायेंगे।

यह घोषणा सुनते ही गण्ड की पत्नी उस कपिल गौ को राजमहल ले गई, जो उसका पति दो दिन पहिले लाया था। वह नहीं जानती थी कि वह गौ को चुरा कर लाया था। वह नहीं चाहती थी कि उसका पति और पुत्र चोरी करें। इसलिए गण्ड ने पत्नी से कहा था कि वह पचास रुपये में वह गौ हाट में खरीद लाया था। उसने सोचा कि वह सच ही कह रहा था। उसने पचास रुपये की गौ बेचकर हज़ार रुपये पाने चाहे।

इसी तरह राजमहल में और भी कई गौवें आयीं। परन्तु जयन्त जान गया कि उसकी गौ वही थी, जो गण्ड की पत्नी लायी थी। उसने यह बात मन्त्री के कान में कह दी। "यह गौ तुम्हारे पास कहाँ से आयी?" मन्त्री ने जब गण्ड की पत्नी से पूछा, तो उसने कहा—"कल मेरे पति

ने इसे हाट में खरीदा था।" "तो तुम घर जाकर अपने पति को यहाँ भेजो। उसे रुपये दे देंगे।" मन्त्री ने कहा।

गण्ड की पत्नी घर के लिए निकली। उसके पीछे-पीछे कुछ सैनिक भी गये।

गौ चुराकर, घर ले जाकर, उसे आँगन में बाँध, अपनी पत्नी से झूट कहकर, गण्ड यह जानने के लिए कि उसके लड़के ने कैसे अपने हिस्से का काम किया था, निकल पड़ा। कई जगह घूमा, पर प्रचण्ड नहीं दिखाई दिया। रात-भर बिना नीन्द के गण्ड घूम-कर जब घर पहुँचा, तो घर में पत्नी और गौ न थी। उसी समय सैनिकों ने गण्ड को पकड़ लिया।

वे उसको बाँधकर राजा के पास ले गये। गण्ड को अगर प्रचण्ड का पता न लगा था, तो इसका कारण था। जयन्त का घोड़ा, जैसा कि वह चाहता था, उस तरह नहीं चला। उसने अकड़ दिखाई। यह डरकर कि कहीं वह उसे गिरा न दे, उसने लगाम छोड़ दी और उसको उसकी इच्छानुसार जाने दिया। वह सीधे जयन्त के घर पहुँचा। जयन्त के नौकर घोड़े को और घोड़े पर सवार आदमी के पास जयन्त कपड़े, थैली आदि देखकर, जान गये कि कहीं कुछ धोखा हुआ था। उन्होंने प्रचण्ड को पकड़ लिया और अगले दिन उसे पकड़कर राजा के पास ले गये।

बाप बेटे एक ही समय राजा के सामने कैदी होकर खड़े थे। दोनों करीब-करीब रंगे हाथ पकड़े गये थे। जयन्त का धन और पोषाक मिल गई। बाप बेटे, दोनों कैद में डाल दिये गये।

सौतेली माँ

एक गाँव में एक किसान था। उसकी पत्नी, एक लड़के को जन्म देकर मर गई थी। लड़के का नाम वेणु रखा गया। क्योंकि उसकी देखभाल करने के लिए घर में कोई न था, इसलिए किसान ने फिर शादी कर ली। किसान की दूसरी पत्नी का नाम सोना था।

सोना ने वेणु को बहुत लाड़-प्यार से पाला पोसा। परन्तु अड़ोस-पड़ोस के लोग जब कभी वेणु को देखते, तो कहा करते—"विचारे की माँ नहीं है। भले ही क्यों न बहुत अच्छी तरह देखे, क्या सौतेली माँ असली माँ हो सकती है!" वेणु ने इस तरह की बातें कई बार सुनीं। सौतेली माँ का शब्द उसे गाली-सा लगता।

सोना के बच्चे नहीं हुए। कुछ समय बाद किसान बीमार हुआ और मर गया। तब अड़ोस-पड़ोस के लोगों ने कहा—"विचारा, जब से पैदा हुआ है सौतेली माँ सता रही है। विचारा पिता से कुछ लाड़-प्यार पाता था, अब वह भी गुज़र गया। अब तो सौतेली माँ मनमानी करेगी। न मालूम कैसे यह उसके साथ गुज़ारा करेगा!"

इस तरह की बातें सुन-सुनकर, वेणु को अपनी सौतेली माँ पर सन्देह होने लगा। जब कभी वह कुछ शरारत करता और सोना उसे डाँटती-डपटती, तो उसका सन्देह और भी पक्का हो जाता। फिर जब प्रेम दिखाती, तो वह सन्देह दूर हो जाता। इसलिए यदि कोई उसकी सौतेली माँ की बुराई करता, तो वह कहा
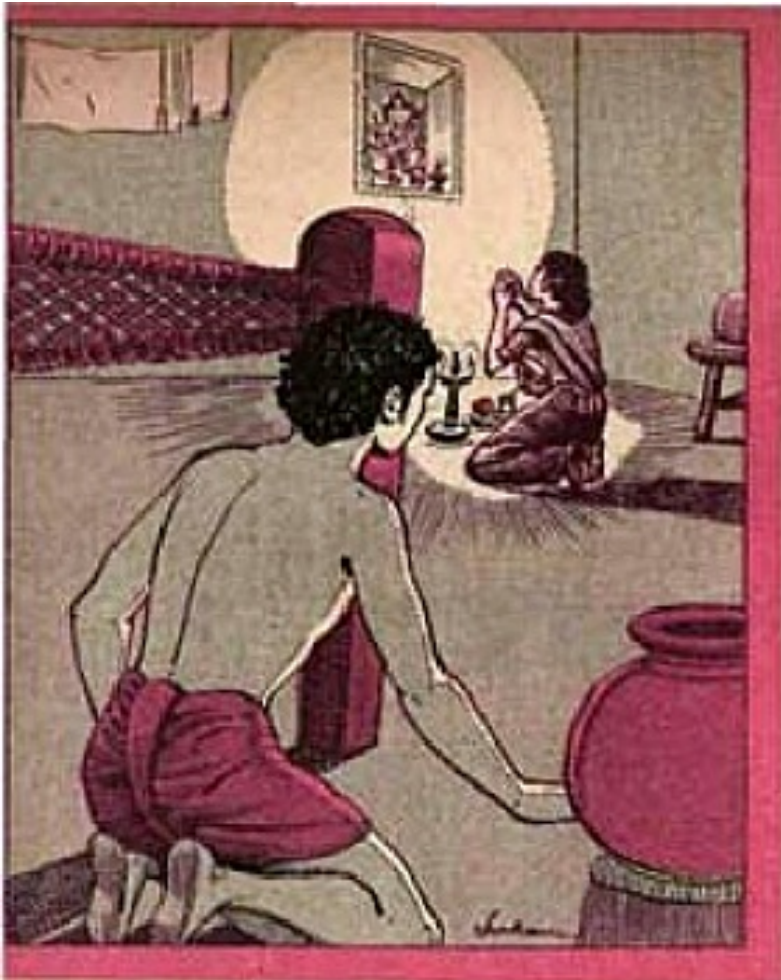
करता—"नहीं, तो मेरी मौसी तो मुझे बहुत अच्छी तरह देखती है।"

"बड़े जो हो रहे हो, क्यों नहीं अच्छी तरह देखेगी! पर न मालूम मन ही मन क्या सोच रही हो! ज़रा सम्भलकर रहना।" अड़ोस-पड़ोस के लोग कहा करते।

लोग जब इस तरह की बातें कहा करते, तो उसमें फिर सन्देह जगता। जब उसे सुनाया जाता कि सौतेली मातायें किस तरह बच्चों को सताती थीं, तो उसका सन्देह और भी बढ़ जाता। इसलिए वह अपनी सौतेली माँ के बारे में सतर्क रहता।

सोना रोज भगवान के सामने दीया जलाकर, हाथ जोड़कर कुछ गुनगुनाया करती। यह सुनने के लिए कि वह क्या गुनगुनाती थी, वेणु एक दिन पास ही छुप गया और उसने उसकी प्रार्थना सुनी।

"भगवान, हमारे वेणु को चींटी की तरह, स्त्री की तरह बनाओ, उसे हमेशा भूख लगा करे, वह रस्सी की तरह हो, वह मिट्टी के घड़े की तरह हो...." इस तरह सोने ने प्रार्थना की।

यह सुनते ही वेणु को बड़ा दुःख हुआ, उसे अपनी सौतेली माँ का असली रूप का पता लगा। यदि वह उसका हित चाहती, तो क्या वह भगवान के सामने यों प्रार्थना करती! चींटियाँ छूते ही मर जाती हैं। स्त्रियाँ बिल्कुल निकम्मी होती हैं! भूख से मरनेवाले भिखारी होते हैं। रस्सी सिवाय पशुओं को बाँधने के, किसी और काम नहीं आती, मिट्टी के बर्तन में छोटी-सी चोट लगती है कि नहीं छेद हो जाते हैं। जो "मौसी" इस तरह की प्रार्थना करे, उस माँ का मुँह कैसे देखा जाय!

वेणु विरक्त-सा हो उठा। बिना किसी से कहे, वह घर से निकल गया और इधर

उधर घूमने लगा। वह कहाँ जा रहा था, क्यों जा रहा था, किसी को न मालूम था।

जब कभी भूख लगती, तो किसी घर के सामने खड़े होकर—"माँ भीख।" चिल्लाता। जो कुछ मिलता, खाता, नींद आती, तो किसी पेड़ के नीचे सो जाता।

जाता, जाता, वह एक दिन सूर्यास्त के समय, एक जंगल में पहुँचा। उसने वहाँ एक हाथी को सोता पाया—जब उसने देखा कि वह हाथी हिल डुल नहीं रहा था, तो उसके पास गया। वह जान गया कि वह मरा हुआ हाथी था। उस दिन-रात को वहीं पत्थरों पर सो रहा। अगले दिन वेणु जो उठा, तो उसे हाथी की लाश दिखाई दी। पर वह पहिली जगह से कुछ दूर हट कर थी—मरा हाथी स्वयं तो हट नहीं सकता, फिर वह कैसे गया, उसने पास जाकर देखा।

कई करोड़ चींटियाँ उस हाथी को खींचने की कोशिश कर रही थीं। हाथी का शरीर, उनके खींचने के कारण कुछ हिल रहा था। यह देख वेणु की चींटियों के बारे में अच्छी राय बन गई, वह उनको गौरव की दृष्टि से देखने लगा।

वेणु वहाँ से निकला, दिन-भर चलकर शाम को एक गाँव में पहुँचा। वहाँ एक झोंपड़ी के सामने एक चबूतरा था, उसने उस पर में झाँक कर देखा। अन्दर एक रोगी और दो बच्चे थे।

"क्या रात को बाहर चबूतरे पर सोने दोगे! मैं बहुत दूर से आ रहा हूँ।" वेणु ने कहा। रोगी इसके लिए मान गया।

अन्दर बच्चे चिल्ला रहे थे—"भूख लग रही है, नींद आ रही है, मगर माँ नहीं आ रही है।"

"आयेगी, ज़रा धीरज रखो, मुझे भी तो भूख लग रही है।" रोगी पिता, बच्चों को समझा रहा था। कुछ देर बाद बच्चों की माँ आयी। "कितना ही काम करो, पर एक एक करके काम बताते ही जाते हैं। छोड़ते ही नहीं है। सब काम करके मज़दूरी लेकर, आटा लाते-लाते इतनी देर हो गई है।" कहकर, उसने खाना पकाना शुरु कर दिया। जब बच्चे भूख के कारण चिल्लाते, तो कहती—"ठहरो बस, दो मिनट में हो जायेगा।" उनको समझाती। वे भी चुप हो जाते। थोड़ी देर में उसने बच्चों को खाना खिलाया, पति को भी कुछ पीने को दिया, खुद खाने के लिए बैठी।

"अरे हाँ, बाहर चबूतरे पर एक लड़का लेटा हुआ है। दूर से आ रहा है। क्या उससे कुछ पूछा?" पति ने कहा।

"उहूँ, नहीं तो," कहती वह दीया लेकर बाहर आयी, चबूतरे पर वेणु को देखकर पूछा—"कौन हो! तुम कुछ खाना दूँगी, खाकर सो जाना।" उसने कहा।

अन्दर जो कुछ हो रहा था वह वेणु सुन ही रहा था। उसने कहा—"मुझे कुछ नहीं चाहिए तुम भोजन करो।"

"अरे यह क्या! न मालूम कहाँ के हो! कैसे भूखे रहोगे! शरमाओ मत, कुछ खालो।" कहते हुए, उसने वेणु को कुछ खाने के लिए लाकर दिया। उसने वह खाकर पानी पिया।

अगले दिन उसने वेणु के बारे में पूछ ताछ की। "मेरा कोई नहीं है, मैं दर-दर भटक रहा हूँ।"

"तो तुम चार पाँच दिन यहीं रहो, जहाँ मैं काम कर रही हूँ, कल उनके घर शादी है। चार पाँच दिन तुम्हें भी हमारे साथ अच्छा खाना मिलेगा।"

वेणु को उस स्त्री को देखते ही, अपनी "मौसी" याद हो आयी। उसे स्त्रियों के शक्ति सामर्थ्य पर भी विश्वास हो गया। वह किसी के घर खून पसीना करके आती है और घर में भी काम करती है। जब तक वह घर में नहीं आ जाती, तब तक रोगी पति और बच्चे बेसहारे से हैं।" उसके कारण ही घर में रौनक-सी आ जाती है।

विवाह हुआ। वेणु ने चार दिन खूब पेट-भर खाना खाया। उसे अपचन हो गया, तन्दुरुस्ती बिगड़ गई। "मुझे भूख नहीं है। तबीयत ठीक नहीं है।" उसने उस स्त्री से कहा।

"भूख ही सेहद है, भूख न लगे, तो सेहद बिगड़ेगी।" उस स्त्री ने चिन्ता व्यक्त की।

वेणु समझ गया क्यों उसकी "मौसी" ने प्रार्थना की थी कि उसे भूख लगती रहे। उसने उस स्त्री से अपनी "मौसी" के बारे में कहना चाहा।

सब सुनकर उसने कहा—"अरे पगले तुम्हारी माँ जैसा उसका नाम है, वैसी ही है। उसके बारे में सन्देह करके चले

आये हो! तुरत चले आओ, न मालूम वह तुम्हारे लिए कितनी दुखी हो रही होगी।"

वेणु कहीं न रुका, सीधे अपने घर आधी रात के समय पहुँचा। ठीक उसने उस समय देखा कि कोई चोर उसके घर में सेन्ध लगा रहा था। वह भी उसी सेन्ध से अन्दर गया और चोर को पीछे से पकड़ लिया।

"माँ....मैं हूँ, पहिले दीया जलाओ।" चोर को पकड़े पकड़े उसने कहा।

सोना ने दीया जलाया। चोर को देखा, रस्सी लाकर, उसने चोर के हाथ बाँध दिये। अड़ोस पड़ोस के लोग उठे और वे चोर को पकड़ ले गये।

सोना ने अपने लड़के को देखकर खुशी के आँसू बहाये। "बिना कहे सुने कहाँ चले गये थे।" उसने वेणु से पूछा। वेणु ने बिना छुपाये उससे सब कुछ कह दिया। "माँ, तुमने क्या भगवान से नमस्कार करके कहा था कि मैं चींटी हो जाऊँ! खी की तरह बन जाऊँ, भूखा हो जाऊँ, रस्सी हो जाऊँ, अब समझ में आया है। पर क्यों कहा था कि मिट्टी का बर्तन बन जाऊँ यह समझ में नहीं आया।"

"बेटा! यदि मिट्टी के बर्तन को ठीक तरह रखा गया और उसका अच्छी तरह उपयोग किया गया, तो वह बहुत दिन आता है। कई काम के लिए, मिट्टी का बर्तन, सोने, चान्दी, पीतल के बर्तनों से भी अच्छा है। गरीब से गरीब भी उसे खरीद सकते हैं।" सोना ने कहा। वेणु उसकी यह बात सुनकर सन्तुष्ट हो गया

भय कैसा होता है?

एक गाँव में एक गृहस्थी था। उसके लड़कों में श्रीपत बड़ा शरारती था। वह हमेशा कोई न कोई बेहूदा खेल खेलता रहता। रात में भी वह बिल्ली और कुत्ते खदेड़ता घर में घूमता रहता। और तो और वह चूहे आदि से भी खेला करता। उसे खतरे से भी डर न था। भय किसे कहते हैं, वह न जानता था।

पिता को यह फ़िक्र सताने लगी कि श्रीपत निखट्टू होता जा रहा था। वह उसे एक गुरु के पास ले गया। उससे कहा कि यदि उसने उसको कामकाजी बना दिया, तो उसे दुगनी गुरु दक्षिणा देगा। गुरु ने भी उसे पढ़ाने लिखाने की बहुत कोशिश की, पर वह कामयाब न हुआ। "अरे तेरी खोपड़ी में सब कुछ है, पर भय नहीं है। जब तक वह नहीं आयेगा तब तक तुम कुछ न बन सकोगे!"

"यह बताइये कि भय कैसा होता है, कहाँ होता है, ले आऊँगा।" श्रीपत ने कहा।

"भय कैसा होता है, यह तुम्हें दिखाऊँगा।" कह गुरु ने उस दिन रात को कम्बल ओढ़ लिया। और ज़ोर ज़ोर से चिल्लाता उस जगह आया, जहाँ श्रीपत सो रहा था। श्रीपत उठा। उसने पूछा—"कौन हो तुम!"

"भूत हूँ। तुम्हें निगल जाऊँगा।" गुरु ने कहा।

"ओहो! सब तुम्हें ही भूत कहते हैं! पर तुम्हारा तो मुख नहीं दिखाई देता है। कैसे तुम मुझे निगलोगे!" श्रीपत ने

पूछा। गुरु अचरज में पड़ गया। पर श्रीपत को बिल्कुल भी डर न लगा। और तो और उसने भूत से यह भी कहा—"ठहरो मैं गुरु को उठाकर तुम्हें थोड़ा-सा खाना दिलवाऊँगा। क्या, उसके बाद, तुम मुझसे खेलोगे भूत!"

जब उसने उसको पकड़ना चाहा, तो गुरु ने भागने की कोशिश की और गिर गया। श्रीपत ने उसे उठाकर कहा—"तो आप हैं! तब तो यह खेल अच्छा है।" अगले दिन सवेरे गुरु ने, श्रीपत को, उसके पिता को सौंपते हुए कहा—

"तुम्हारे लड़के को भय नहीं है। मैं उसे पढ़ा लिखा नहीं सकता।"

पिता ने श्रीपत को कुछ धन देकर कहा—"तुम जाओ कुछ कामकाजी हो जाओ, तभी घर आना।" उसे उसने घर से भेज दिया।

श्रीपत जब घर से जा रहा था, तो उसे जंगल के रास्ते में कुछ शिकारी दिखाई दिये। उन्हें शेर दिखाई तो दिया था, पर वह ऊँची घास में छुप गया था। किधर जाया जाये, वे सोच नहीं पा रहे थे। "न मालूम वह किधर से हम पर कूदे, यही भय है।" एक ने कहा। श्रीपत ने यह सुन कहा—"भय! कहाँ है! मुझे भी थोड़ा दिखाओ।" उसने शिकारियों से कहा।

"वह देखो, उस गुफ़ा में जितना तुम चाहो उतना भय है। देख लो।" शिकारियों ने कहा। श्रीपत जल्दी-जल्दी उस गुफ़ा की ओर गया, वहाँ उसने दो शेर के बच्चों को देखा। "कितनी बड़ी बिल्लियाँ हैं! क्या इन्हें ही भय कहा जाता है!" वह शेर के बच्चे को उठाकर, गुफ़ा से बाहर आया। एक बेल उसके गले में बाँधकर, वह उसे चलाने लगा।

"अरे, यह कितना बहादुर है।" शिकारी उस पर अचरज करके, उसे घेर कर खड़े हो गये। "क्या यही भय है?" श्रीपत ने उनसे पूछा।

"यह ही हमारे लिए भय है। चाहे इनका बाप भी आये, तब भी तुम्हें डर नहीं लगेगा। चलो, इसे राजा के पास ले जाकर उनसे ईनाम पाओ।" शिकारियों ने कहा।

राजा ने शेर के बच्चे को लेकर, श्रीपत को ईनाम दिया। राजकर्मचारियों ने उसको दावत दी और उसकी सारी बातें मालूम कर लीं। "मैं भय को खोज रहा हूँ। वह अभी तक मुझे नहीं मिला है!" श्रीपत ने उनसे कहा।

राजा के पहलवान ने उससे कहा—"मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें भय दिखाऊँगा।" वह श्रीपत को एक और पहलवान के घर ले गया। यह पहलवान किसी और देश से आया था, उसने वहाँ के सब पहलवानों को हरा दिया था। शाम के समय ठंडी हवा में वह पहलवान और उसकी लड़की, घर के सामने बैठे-बैठे गप्पें मार रहे थे। राजा के पहलवान ने उस पहलवान को श्रीपत को दिखाकर कहा—"तुम उसकी छाती पर तीन मुक्के मारो, वह तुम्हें बता देगा कि भय किसे कहते हैं।"

यह जान श्रीपत खुश हुआ कि उसे भय जानने का मौका मिल रहा था। उसने परदेशी पहलवान के पास जाकर कहा—"ज़रा, खड़े तो होओ।" पहलवान खड़ा हो गया। तुरत श्रीपत ने उसकी छाती पर तीन मुक्के मारे। मुक्के खाकर पहलवान नीचे गिरा। उठकर, उसने दान्त पीसकर, श्रीपत का गला दबा देना चाहा, पर उसकी लड़की ने बीच में आते हुए

कहा—"ठहरो पिताजी, तुम चित गिर गये थे, अब क्यों बिगड़ते हो?"

"क्या इसने ठीक तरह मुझे जीता था?" पहलवान ने पूछा।

"मैं आपको जीतने नहीं आया हूँ। मैं तो यह जानने के लिए आया हूँ कि भय कैसा होता है।" श्रीपत ने कहा।

"तो तुम इतने निडर हो, इस बार मारो, देखें तो...." पहलवान ने कहा।

श्रीपत ने फिर उसकी छाती पर धड़ाम से मारा।

पहलवान को, उसकी लड़की हाथ पकड़ कर अन्दर ले गयी। "तुम में बल हो सकता है। उसकी निडरता में, तुम्हारे पास आधी भी नहीं है। उससे पूछ लो कि वह तुम्हारा दामाद होगा कि नहीं?"

पहलवान ने ज़ोर से हँसकर कहा—"तो यह बात है!" उसने बाहर आकर, कहा—"मेरी लड़की तुमको यह बताना चाहती है कि भय किसको कहते हैं! क्या उससे शादी करोगे?" उसने श्रीपत से पूछा। श्रीपत मान गया। दोनों की शादी हो गई।

श्रीपत ने अपनी पत्नी से कहा—"तुमने कहा था न कि भय क्या चीज़ होती है, दिखाओगे? कहाँ है?"

"अभी दिखाती हूँ।" वह बाहर गई और एक मेंढक पकड़कर लाई और उसे उसने उस पर डाल दिया।

श्रीपत झट उठा। "बाप रे बाप" चिल्लाया।

"यह ही भय है," श्रीपत की पत्नी ने हँसते हुए कहा।

पिता के लिए

कभी गान्धार देश का राजा धन्वन्त था।

एक बार जब वह शिकार खेलने गया हुआ था तो उसने एक फूल के पेड़ के नीचे एक अत्यन्त सुन्दरी को खड़ा पाया। तुरत राजा उस पर मुग्ध हो गया। राजा, अपने आदमियों को पीछे रहने के लिए कह अकेले उस स्त्री के पास गया। उससे पूछा—"तुम कौन हो? इस जंगल में क्यों अकेली खड़ी हो?"

"मैं एक गन्धर्व स्त्री हूँ। आकाश मार्ग से जा रही थी कि इस पेड़ के फूलों ने मुझे आकर्षित किया। मैं नीचे चली आयी और इसके नीचे खड़ी हो गई।" उसने जवाब दिया।

"तुम अपने लोक को वापिस न जाओ। हमारे साथ आकर, हमारे अन्तःपुर में रह जाओ और मुझे आनन्द पहुँचाओ।" राजा ने कहा।

गन्धर्व स्त्री इसके लिए नहीं मानी। आखिर उसने खिझकर कहा—"तुम्हारी आँखों ने तुम्हारी बुद्धि को बिगाड़ दिया है। कहा भी कि मैं गन्धर्व स्त्री हूँ, पर तुम समझ न सके, इसलिए तुम अन्धे हो जाओ।" यों शाप देकर वह आकाश में उड़ गई।

अन्धे धन्वन्त को उसके लोगों ने घर पहुँचाया। उसकी अन्धता के लिए बहुत चिकित्सा की गई। पर कोई फायदा नहीं हुआ। जो अन्धापन शाप से आया था, वह शाप विमुक्ति पर ही जा सकता था। किसी को गन्धर्व स्त्री के पास जाना चाहिए था और उसके अनुग्रह से राजा का अन्धत्व दूर करना था।

धन्वन्त का एक ही एक लड़का था। उसका नाम निरंजन था। "मैं गन्धर्व लोक जाऊँगा। मालूम करूँगा कि किस गन्धर्व स्त्री ने पिता को शाप दिया था। जैसे भी हो उसे मनाऊँगा और पिता के अन्धत्व को दूर करने का उपाय मालूम करके आऊँगा।" यह कहकर निरंजन निकल पड़ा।

सब कहा करते थे कि गन्धर्व देश ईशान्य दिशा की ओर था। इसलिए वह उस दिशा ही ओर काफी देर तक चलता रहा। फिर ऐसी जगह पहुँचा जहाँ कोई रास्ता नहीं था। वहाँ कोई भी न था। खाने के लिए भी कुछ न था। निरंजन भूखा-प्यासा एक पेड़ के नीचे लेट गया। जब उसे होश आया तो एक कुरूपी स्त्री उसकी बगल में बैठकर उसे कोई फल खिला रही थी।

"मैं एक पिशाची हूँ। इस पेड़ पर रहती हूँ। आज तुम मेरे अतिथि के रूप में आये हो इसलिए मैं तुम्हारा भरसक अतिथि सत्कार करूँगी। इस तरफ कोई नहीं आता, तुम क्यों आये हो!" उस स्त्री ने निरंजन से पूछा।

निरंजन ने अपनी सारी कथा पिशाची को सुनाकर कहा—"मैं भूख से गिर गया था। तुमने मुझे खाना देकर मेरी रक्षा की। यदि तुमने मुझे गन्धर्व लोक का रास्ता बता दिया, तो मुझे कुछ और नहीं चाहिए।"

"यहाँ से गन्धर्व लोक जाने का बस आकाश मार्ग ही है। वह तुम्हारे लिए असम्भव है।" पिशाची ने कहा।

"असम्भव ही क्यों न हो, यह काम करना ही होगा, यहाँ से वापिस नहीं जा सकता।" निरंजन ने कहा।

"मैं, तुम्हें गन्धर्व लोक के द्वार तक ले जा सकती हूँ। मैं अन्दर नहीं जा सकती।" पिशाची ने कहा।

"यदि इतना ही किया, तो मैं जीवन भर तुम्हारा ऋणी रहूँगा।" निरंजन ने कहा।

"मेरी एक इच्छा पूरी कर दो और वह सारा ऋण पूरा हो जायेगा। कहो?" पिशाची ने पूछा।

"यदि मेरे लिए सम्भव हुआ, तो तुम्हारी इच्छा जरूर पूरी करूँगा।" निरंजन ने कहा।

"क्या मैं ऐसी चीज़ माँगूँगा, जो तुम्हारे लिए सम्भव नहीं है।" कहते हुए पिशाची ने निरंजन को आँखें मूँदने के लिए कहा।

जब उसने आँखें खोलीं, तो वह गन्धर्व लोक के द्वार पर था। पिशाची एक बादल पर बैठी कह रही थी। "जब तक तुम वापिस नहीं आ जाते, तब तक यहीं रहूँगी। मैं, फिर तुम्हें तुम्हारे देश पहुँचा दूँगी।"

उसका गन्धर्व लोक में पैर रखना था कि कई गन्धर्व स्त्रियों ने आकर उसे घेर लिया। "कितना सुन्दर है! किसी ने शायद बुलाया है!" कई ने उससे पूछा—"क्या चाहिए! कौन चाहिए!"

"मुझे एक गन्धर्व स्त्री से काम है। वह कुछ दिन पहिले भूलोक आई और पिताजी को शाप देकर चली आई कि वे अन्धे हो जायें। मैं उसका नाम नहीं जानता।" निरंजन ने कहा।

गन्धर्व स्त्रियों ने आपस में कुछ बातचीत की, यह अनुमान करके कि निरंजन के पिता को, गन्धर्व राजा की लड़की, पुष्पोत्तमा ने शाप दिया होगा, वे उसको उसके पास ले गये।

"क्या तुम उस राजा के लड़के हो! मैंने ही उसको शाप दिया है। उसने अपने

अन्तःपुर में मुझे रहने के लिए कहकर, मेरा अपमान किया। क्या तुम इसलिए ही इतनी दूर आये हो?" पुष्पोत्तमा ने पूछा।

"आपने मेरे पिताजी को ठीक तरह समझा नहीं। उन्होंने यह आपके प्रति आदरवश कहा था न कि आपका अपमान करने के लिए। कृपा करके, आप अपना शाप वापिस ले लीजिये और उनको दृष्टि दीजिये।" निरंजन ने कहा।

पुष्पोत्तमा ने उसको एक फूल देते हुए कहा—"इस फूल को अपने पिता के आँखों पर लगाओ, उनका अन्धत्व चला जायेगा। पर यह काम ऐसे व्यक्ति को ही करना होगा, जो वचन देकर न मुकरा हो। ऐसा न हुआ, तो तुम्हारा पिता फिर अन्धा हो जायेगा।"

निरंजन पुष्प लेकर, पुष्पोत्तमा से विदा लेकर, गन्धर्व लोक के द्वार से जहाँ पिशाची थी, वहाँ आया। एक क्षण में उसे वह उसके देश ले गई। "राजकुमार! जो कुछ काम, मेरे द्वारा हो सकता था, वह हो गया है। तुमने कहा था कि मेरी इच्छा पूरी करोगे। मुझ से विवाह करो। यही मेरी इच्छा है।"

निरंजन ने कहा—"अच्छा, मैं जल्दी ही वापिस आ जाऊँगा, तब तक तुम यहीं रहो।" कहकर, वह राजमहल में गया। जो पुष्प गन्धर्व स्त्री ने दिया था, उसे अपने पिता के आँखों पर लगाया। तुरत राजा को दृष्टि लाभ हो गया। फिर निरंजन ने अपने पिता और मन्त्रियों से पिशाची की बात कही और उनसे कहा कि वह उससे शादी करेगा। पर राजा ने उसे मना किया।

"नहीं, बेटा! सिर्फ इसलिए कि तुमने उसे वचन दिया है, तुम उससे विवाह न करो।" राजा ने कहा।

"यदि मैं वचन देकर मुकर गया, तो फिर आप अन्धे हो जायेंगे।" निरंजन ने कहा।

"तुम्हारा एक पिशाची से विवाह करने से तो यही अच्छा है कि मैं ऐसे ही रह जाऊँ।" राजा ने कहा।

उसने पिशाची के पास आकर कहा—"मैं तुमसे विवाह करके, तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगा। पर तुम किसी को न दिखाई देना। तुम्हें देखकर, सब डर जायेंगे।"

"पाणिग्रहण के बाद तुम जैसे मुझे रहने के लिए कहोगे वैसे ही रहूँगी।" पिशाची ने कहा।

निरंजन ने विधि के अनुसार उसका हाथ पकड़ा। तुरत पिशाची अदृश्य हो गई और उसकी जगह एक राजकुमारी वहाँ आ खड़ी हुई। "यह क्या आश्चर्य है!" निरंजन ने पूछा।

"मैं वत्स देश की राजकुमारी हूँ। मेरा नाम सौरभ है। एक बार एक बूढ़ा योगी हमारे घर आया। मेरी पिता ने मुझे उसकी शुश्रुषा करने के लिए कहा। उस योगी ने मेरे साथ विवाह करने की इच्छा मेरी पिता के सामने प्रकट की। मेरे पिता योगी के डर से, इसके लिए मान गये। परन्तु मैं उस योगी से विवाह करने के लिए नहीं मानी। योगी ने मुझे शाप दिया कि मैं एक कुरूपी पिशाची बन जाऊँ। जब मेरे पिता ने उसको बहुत मनाया, तो उसने कहा कि यदि किसी ने मुझसे उस विकृत आकार में विवाह करने का वचन दिया और पाणिग्रहण किया, तो शाप विमुक्ति हो जायेगी। अब मेरा शाप विमोचन हुआ है।" उसने कहा। सब यह जानकर बड़े खुश हुए कि निरंजन की पत्नी पिशाची न थी।

भाट की चाल

एक गाँव में बालकृष्ण भट्ट नाम का एक भाट था। वह बड़ा चलता हुआ था। ग्राम में कोई शुभ कार्य होता, तो वह वहाँ जाता और वहाँ लोगों की प्रशंसा करता और जो कुछ वे देते, उससे जीवन निर्वाह करता।

गाँव में और तो उसे कभी न कभी कुछ देते, पर जमीन्दार ने कभी भूलकर भी बालकृष्ण भट्ट को कुछ न दिया। जमीन्दार के घर में, जब कभी कोई शुभ कार्य होता, तो वह वहाँ जाकर, प्रशंसात्मक पद्य सुनाया करता। परन्तु कंजूस जमीन्दार हर बार कहता—"ओहो, कितने सुन्दर पद्य सुनाये हैं। इसके लिए, तुम्हें अच्छा ईनाम मिलना चाहिए। जब अगला कोई शुभ कार्य हो, तो दिखाई देना।" कई शुभ कार्य हुए पर बालकृष्ण को कभी कुछ न मिला।

इतने में जमीन्दार की लड़की का विवाह आया। बालकृष्ण भट्ट ने इस बार तय कर लिया कि वह जमीन्दार से अच्छा ईनाम लेकर रहेगा। उसको दूध की हमेशा तंगी रहा करती थी। बालकृष्ण भट्ट ने इस विवाह के अवसर पर, जैसे भी हो, जमीन्दार से एक दुधारु गौ लेने की ठानी।

वह विवाहवाले घर में गया। वहाँ उसने जमीन्दार की प्रशंसा करते, वर-वधु को आशीर्वाद देते कुछ पद्य पढ़े। "दाता! आपने कहा था कि इस बार आप बढ़िया ईनाम देंगे, कृपा करके दिलवाइये।"

ज़मीन्दार बन्धु मित्रों के सामने न भी नहीं कर सकता था। इसलिए उसने पूछा—"बताओ, क्या चाहिए!"

"बच्चोंवाला हूँ। कृपा करके एक दुधारु गौ दिलवाइये।" बालकृष्ण भट्ट ने कहा।

ज़मीन्दार ने एक नौकर को बुलाकर कान में कहा—"ढूँढ कर एक बूढ़ी गौ उसे दे दो।"

नौकर ने जल्दी ही एक बूढ़ी गौ ज़मीन्दार के सामने खड़ी करदी। उसे देखकर सब अतिथि चकित हुए, वे सोचने लगे कि भाट क्या कहता है।

भाट दुविधा में पड़ गया। गौ को ले जाना बिल्कुल बेकार था। यदि नहीं लेता है, तो ज़मीन्दार का अपमान होता है। इसलिए उसने उस गौ को न लेने के लिए एक चाल चली।

वह गौ के पास गया। उसके कान में यों कहा जैसे उसे कुछ बता रहा हो, फिर उसने उसके मुख के पास इस तरह कान रखा, जैसे वह गौ का कहा कुछ सुन रहा हो। यह देख सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। कई कहकहा करने लगे। फुसफुसाने लगे।

ज़मीन्दार ने उसका परिहास करते हुए कहा—"अरे गौ से क्या कानाफूसी कर रहे हो!"

"कुछ नहीं हुज़ूर, मैंने इस गौ से पूछा कि क्या बछड़ा दोगी?" बालकृष्ण भट्ट ने कहा।

"वह क्या कहती है!" ज़मीन्दार ने उपहास करते हुए पूछा।

"वह कह रही है, मैं कृतयुग में महिषासुर के पास थी। महिषासुर आदिशक्ति के हाथ मारा गया। कृतयुग समाप्त हो गया, पर मैं न मरी। त्रेता युग आया। रावण का पैदा होना, राम के हाथ उसका मारा जाना, मैंने स्वयं अपनी आँखों देखा है। तब भी मैं नहीं मरी। परन्तु मुझे अब किसी चीज़ पर मोह नहीं है। वैराग्य हो गया है। कलियुग आ गया। इतने युग जिसने देखे हैं, उससे यह पूछते कि कब बछड़ा दोगी, तुम्हें शर्म नहीं आती! क्या लोग मुझे देखकर हँसेंगे नहीं! हुज़ूर, यह कह रही है।" बालकृष्ण भट्ट ने कहा। उसकी बातें सुनकर, वहाँ के लोग ज़ोर से हँसे। उन लोगों के सामने ज़मीन्दार को शर्मिन्दा होना पड़ा।

"बेवकूफ कहीं का, मैंने अच्छी गौ लाने के लिए कहा और तुम एक बूढ़ी गौ ले आये। जाकर, इसे एक अच्छी गौ लाकर दो...." ज़मीन्दार नौकर पर गरजा।

नौकर बूढ़ी गौ को ले जाकर, अच्छी गौ ले आया। बालकृष्ण भट्ट ने ज़मीन्दार की उदारता पर कुछ और पद्य सुनाये और उस गौ को घर ले गया।

साँप का काटा

पन्नालाल के लड़के का सातवाँ महीना आ गया। एक दिन मीनाक्षी, बच्चे को नहलाकर, चबूतरे पर लिटाकर, जब कपड़े सुखा रही थी तो साँप ने आकर लड़के को डसा। वह जोर से चिल्लाया और बेहोश हो गया।

उस जगह साँप बिच्छू वगैरह ज्यादह थे। वे प्राय: लोगों को काटा करते। इन काटों को मन्त्र पढ़कर ठीक करनेवाला एक आदमी आश्रम बनाकर, गाँव के पास रहा करता था। उस आश्रम का नाम नागाश्रम था। पन्नालाल, मीनाक्षी और लड़के को गाड़ी में सवार कर, नागाश्रम की ओर चला।

रास्ते में एक स्त्री, एक बच्चे को गोदी में लेकर चल रही थी। वह स्त्री, पन्नालाल की गाड़ी की ओर देखकर रुकी। "मेरे लड़के को साँप ने काटा है, नागाश्रम जाना है। क्या गाड़ी में सवार होने दोगे?"

"तो सवार हो। हम भी उसी तरफ़ जा रहे हैं।" पन्नालाल ने उसको भी गाड़ी पर सवार कर लिया।

नागाश्रम में बहुत से लोग थे, जिनको या तो भूतों ने पकड़ रखा था, नहीं तो बिच्छुओं ने डसा था या साँप ने डसा था और वे आदमी भी थे, जो उनको साथ लाये थे। आश्रम का नौकर एक के बाद एक को अन्दर जाने दे रहा था।

वह नौकर पन्नालाल को अच्छी तरह जानता था। इसलिए उसने देखकर कुशल प्रश्न किये। वे दोनों क्या बातें कर रहे थे यह सुनने के लिए मीनाक्षी,

कपड़ों में लपेटे हुए अपने लड़के को गाड़ी में छोड़कर चली गई।

उस स्त्री ने, जो पन्नालाल की गाड़ी में आयी थी, यह सोच कि पन्नालाल को शीघ्र ही प्रवेश मिलनेवाला था बच्चों को बदल दिया। उसने अपने बच्चे को मीनाक्षी के कपड़ों में लपेट दिया और मीनाक्षी के लड़के को अपने कपड़ों में लपेट दिया।

वही हुआ, जो उसने सोचा था। अन्दर जो थे, उनके बाहर आते ही, नौकर ने पन्नालाल को अन्दर जाने दिया। मीनाक्षी भागी भागी गाड़ी के पास आयी, उस कपड़े को उठा कर ले गई, जिसमें उस स्त्री का लड़का था, यह जानकर कि यह बच्चा उसका अपना था, वह उसे लेकर कमरे में गई।

मन्त्र पढ़नेवाले ने उनसे पूछा कि वे किस काम पर आये थे। पन्नालाल ने कहा कि उसके लड़के को सवेरे सांप ने काटा था। मन्त्र पढ़नेवाले ने पन्नालाल का नाम, लड़के का नाम, उनके जन्म नक्षत्र वगैरह मालूम करके मन्त्र पढ़कर कहा—"अब तुम घर जा सकते हो।"

उनके बाहर आते ही उनके साथ आयी हुयी स्त्री ने उनके सामने आकर पूछा—"गल्ती हो गई। तुम अन्दर मेरे लड़के को ले गई थी। देखें, मन्त्र लगाया था कि नहीं। क्या मेरा बच्चा जी गया है!" कहते हुए, उसने मीनाक्षी के हाथ से लड़का ले लिया।

यह सुन मीनाक्षी घबरायी। परन्तु पन्नालाल ने सोचा कि जल्दी में बच्चे अदल-बदल गये होंगे। "हाँ, हाँ, मन्त्र लगा दिया है, तुम्हारे बच्चे को कोई डर नहीं है।"

"तुम्हारा बच्चा हमारे कपड़ों में कैसे आ गया!" मीनाक्षी ने पूछा। उसने उस स्त्री के हाथ से अपना लड़का ले लिया।

मीनाक्षी के प्रश्न का उत्तर दिये बगैर ही उस स्त्री ने कहा—"आप अपने लड़के को भी जल्दी मन्त्र लगवा लीजिये।" जैसे उसको उनके हित का बहुत ख्याल हो।

"हमारे कपड़े हमें दे दो...." कहते हुए मीनाक्षी ने बच्चे के कपड़ों को हटाया। मीनाक्षी के लड़के ने आँखें खोलीं और हाथ पैर हिलाने लगा। उस स्त्री ने भी, अपने बच्चे के कपड़े हटाये। उसे तब भी

साँप काटे की बेहोशी में पड़ा देख, उसका दिल थम-सा गया।

उसने झट पन्नालाल के पैर पकड़ लिये। "बाबू, मेरे किये पाप का मुझे दण्ड मिला है। इस ख्याल से कि मेरे बच्चे को जल्दी मन्त्र लगे, मैंने बच्चों के कपड़े बदल दिये थे। मन्त्र लगाने पर भी मेरा लड़का ठीक नहीं हुआ। मन्त्र न लगाने पर भी आपका लड़का ठीक हो गया। मैं पापिन हूँ, मैंने अपने लड़के के यों प्राण ले लिये।" वह चिल्लाती, आँसुओं की बाढ़ बहाने लगी।

पन्नालाल ने उसे सहलाते हुए कहा—"यदि यह हुआ है, तो इसका कोई कारण है। तुम डरो मत, तुम्हारे लड़के को फिर मन्त्र लगवा देंगे।"

उसने अपने परिचित नौकर से कहकर, उस स्त्री को जल्दी ही अन्दर भिजवा दिया।

उस नौकर ने पन्नालाल को असली रहस्य बता दिया। मन्त्र उसी पर काम करता है, जिस पर मन्त्र लगाया जाता है, यह जरूरी नहीं है कि वह मन्त्र लगानेवाले के सामने ही हो।

यह बात वह स्त्री नहीं जानती थी। इसलिए उस स्त्री ने यह नीच काम किया था।

थोड़ी देर में वह स्त्री भी अपने बच्चे को मन्त्र लगवाकर बाहर आयी। उसका बच्चा भी आँखें खोलकर, खेल रहा था। इस बार उसने पश्चात्ताप के साथ कृतज्ञता प्रकट की—चूँकि यदि पन्नालाल मदद न करता, तो वह अन्दर भी न जा पाती।

पन्नालाल वापिसी रास्ते में भी, उसको अपनी गाड़ी में चढ़ाकर, उसके गाँव छोड़ आया। मीनाक्षी और लड़के के साथ वह अपने घर आ गया।

युद्धकाण्ड

इस प्रकार रावण की सभा में कई राक्षस प्रमुखों को—"हम अभी जाकर राम लक्ष्मण और उनकी वानर सेना को मार देंगे।" उठकर कहता सुन, विभीषण ने उन्हे बैठने का इशारा करके, हाथ जोड़कर रावण से यों कहा।

"बुद्धिमानों का कहना है कि हमें तभी दण्ड का उपाय बरतना चाहिए जब साम, दान, भेद के उपाय असफल हो गये हों असावधान, लोभी, दैवाहत लोगों पर ही दण्ड का शस्त्रोक्त रीति से प्रयोग सफल होता है। राम सावधान है। बलवान है। हनुमान ने लंका में आकर जो कारनामें किये हैं उनको देखकर, लगता है, दैव भी राम के अनुकूल है। शत्रु की शक्ति को कम नहीं आँकिये। यदि यह मान भी लिया जाये कि रावण, राम के राक्षसों के मारने के कारण, बदले में सीता को उठा लाया था। परन्तु राम ने स्वयं खर आदि राक्षसों को नहीं मारा था। वे स्वयं उसपर आक्रमण करने गये थे। राम को आत्मरक्षा में उनको मारना पड़ा। सीता का यहाँ लाया जाना हमारे लिए हानिकारक है। उसको वापिस राम को दे देना अच्छा है।"

विभीषण के यह कहते ही रावण ने सभा छोड़ दी और घर चला गया।

अगर सहायता करे तो भी मेरे सामने नहीं टिक सकता।" कहकर उसने विभीषण को भेज दिया।

फिर रावण ने युद्ध के विषय में अपने मन्त्रियों से परामर्श करना चाहा। वह रथ पर सवार होकर सभा भवन में गया। सब राक्षसों को बुलाने के लिए दूत भिजवाये। दूत राक्षसों के घर गये, वे भिन्न-भिन्न कामों में लगे हुए थे। वे उनको सभा में बुला ले गये। उनके आने के बाद, रावण ने विभीषण, शुद, प्रहस्त को अलग अलग स्थान पर बैठने के लिए कहा। फिर उसने प्रहस्त से कहा—"अपने राक्षस सैनिकों से कहो कि वे लंका नगरी की, हमेशा की अपेक्षा और अच्छी तरह रक्षा करें।"

प्रहस्त बाहर गया। फिर सभा में उपस्थित होकर उसने कहा—"सम्पूर्ण सेना सन्नद्ध है।"

रावण ने कहा—"जो जो काम आपकी सलाह पर किया गया, वह सफल हुआ। अब भी आपकी सहायता से विजय प्राप्त होनेवाली है। आज हमारे सामने क्या समस्या है, इसके बारे में मैं पहिले ही आपसे

विभीषण अगले दिन रावण के महल में गया। ऐसे समय में, जब सिवाय मन्त्रियों के वहाँ कोई न था। उसने अपने भाई से कहा—"जब से सीता आयी है, बहुत दुश्शकुन दिखाई दे रहे हैं। यह बात लंका में क्या पुरुष, क्या स्त्री, सब जानते हैं। मन्त्री भी तुमसे यह कह नहीं पाते। ये बातें, अच्छी तरह सोचो विचारो और जो उचित समझो वह करो।"

रावण ने यह सुनकर क्रुद्ध होकर कहा—"मुझे किसी का भय नहीं है। राम, सीता नहीं पा सकता। देवेन्द्र भी

कह चुका हूँ। चूँकि कुम्भकर्ण छः महीने से सो रहा है केवल उससे ही इसलिए न कह सका। अब वह यहाँ है। जनक की पुत्री, राम की पत्नी सीता को राक्षसों के निवास स्थल दन्डकारण्य से लाया हूँ। मैंने बहुत कहा, पर वह मुझे प्यार नहीं कर रही है। उस तरह की सुन्दरी तीनों लोकों में नहीं है। यह सोचकर कि राम आकर उसकी रक्षा करेगा, उसने मुझ से एक वर्ष का समय मांगा। मैंने हाँ कह दिया। राम के लिए वानर सेना के साथ, समुद्र पार करके आना असम्भव है। परन्तु मान लो, वह पार करके चला आया, तब क्या किया जाय? इसलिए चूँकि एक वानर समद्र पार करके आया और भयंकर युद्ध करके चला गया है, इसलिए बहुत सोच विचार कर सलाह दीजिए। राम वानर सेना के साथ, समुद्र के परले किनारे आया हुआ है। सीता को वापिस नहीं दिया जा सकता। राम लक्ष्मण को मारने का उपाय सोचो।"

रावण की बात सुनकर, कुम्भकर्ण ने क्रुद्ध होकर कहा—"यह परामर्श, हमसे सीता को लाने से पहिले लेना था। किसी भी काम के करने से पहिले यदि अच्छी तरह सोच विचार लिया जाये, तो बाद में पछताने की नौबत नहीं आती। बिना कुछ सोचे विचारे, सीता का अपहरण करके ले आये। राम ने अभी तक तुमको नहीं मारा है, यह ही भाग्य की बात है। इस स्थिति में तुम्हारे सब शत्रुओं को मार कर, तुम्हारे काम को सम्पन्न करने की शक्तिवाला मैं अकेला ही हूँ और मैं यह काम कर दूँगा। तुम निश्चिन्त रहो।"

साम, दान, आदि का उपयोग तो अनाड़ी करते हैं। तुम दण्ड से ही अपना काम बनाओ।"

यह बात रावण को जंची। उसने महापार्श्व से कहा—"मेरे बारे में एक रहस्य है। जब पुजिक स्थल, ब्रह्मा के घर जा रही थी, तब मैंने उससे बलत्कार किया। यह बात ब्रह्मा को मालूम हुई, तब ब्रह्मा ने मुझे शाप दिया कि यदि मैंने कभी किसी स्त्री से बलत्कार किया, तो मेरे सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे। इस शाप के भय के कारण ही मैंने सीता से बलत्कार नहीं किया। राम नहीं जानता कि मैं कितने वेग से कहाँ कहाँ जा सकता हूँ। इसीलिए राम मुझपर हमला कर रहा है। गुफा में सोते हुए शेर को, मृत्यु के मूर्त रूप को मुझे वह यूँहि उकसा रहा है, वह मेरे बाणों की चोट नहीं जानता, अब उसे दिखाऊँगा।"

कुम्भकर्ण की ये बातें सुनकर, रावण को क्रोध आया। यह देख महापार्श्व नायक राक्षस ने कहा—"शहद के लिए भयंकर वनों में प्रवेश करके, जो शहद पा तो लेता है, पर पीता नहीं है, वह परम मूर्ख है। रावण तुम सर्व शक्तिशाली हो—सीता का उपयोग करो, यदि वह नहीं मानती है, तो बलत्कार करो। तुम्हारी इच्छा के पूरी हो जाने के बाद, चाहे जो भी हो, आप उसका मुकाबला कर सकते हैं। देवेन्द्र तक को जीतनेवाले कुम्भकर्ण, इन्द्रजित आदि आपके साथ हैं ही।

विभीषण को रावण का यह रुख पसन्द न आया। उसने कहा—"सीता का लाना, पाँच फणवाले विष सर्प के लाने की तरह है। इन्द्रजित हो, या रावण हो, या कोई भी हो, राम को जीतना असम्भव

है। सीता को राम के पास भेज देना, सब दृष्टि से अच्छा है।"

बिभीषण की बातें सुनकर इन्द्रजित ने कहा—"चाचा, तुम पुलस्त्य वंश में पैदा हुए हो और अनर्गल बातें कर रहे हो। तुम कमज़ोर, निकम्मे, बुज़दिल हो। क्यों सब को डरा रहे हो! राम और लक्ष्मण को मारने के लिए एक राक्षस काफ़ी है। मैंने इन्द्र को पराजित किया है। मुझे देखकर देवता भी भेड़-बकरियों की तरह भाग उठते हैं। ऐरावत को पछाड़कर मैंने उसके दान्त निकाले हैं। क्या इन छोटे-मोटे राजकुमारों को मैं नहीं जीत सकता!"

"बेटा, अभी तुम छोटे हो। तुम अभी सयाने नहीं हुए हो। पिता का समर्थन करके, तुम उनके शत्रु हो रहे हो। यदि हमने सीता को भेंट और उपहार आदि के साथ राम के पास भेज दिया, तो हमारा कल्याण होगा।" बिभीषण ने कहा।

यह सुनकर, रावण बिभीषण पर उबला—"एक वंश के हो और शत्रु पक्षपाती हो, भाई हो, इसलिए तुम्हें माफ़ कर रहा हूँ और कोई होता, तो चीर फाड़कर रख देता।"

रावण के इस प्रकार क्रुद्ध होने पर बिभीषण, चार राक्षस अनुचरों के साथ आकाश में उड़ा। फिर उसने कहा—"बड़े भाई हो, इसलिए तुम्हारे हित की बात कही है। तुमने व्यर्थ मेरी निन्दा की है। मैं इसे नहीं सह सकता, मीठी बातें करनेवाले हज़ारों मिलेंगे, पर सच बातें करनेवाले नहीं मिलेंगे। तुम्हें राम के हाथ मरता नहीं देख सकता। तुम्हारे हित में जो बातें मैंने कही हैं, माफ़ करो। तुम ऐसा करो कि तुम स्वयं, यह लंका और ये राक्षस सुरक्षित रहें। मैं जा रहा

गिरा देते हैं। ये हैं किस खेत की मूली !" इस बीच विभीषण अपने साथियों के साथ समुद्र उत्तरी तट पर पहुँचा। आकाश में खड़े होकर, सुग्रीव और वानरों को देखकर, उसने यूँ कहा।

"दुष्ट राक्षस राजा रावण का मैं भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। वह जटायु को मारकर, दुखी, विवश सीता को जनस्थान से उठा ले गया है और उसे राक्षस स्त्रियों के संरक्षण में रखा है। मैंने उससे कई बार कहा कि वह सीता को राम के पास भिजवाये। पर रावण को मेरी बात जंची नहीं। इसलिए उसने मुझे नीच दृष्टि से देखा और मुझे बुरा भला कहा। मैं पत्नी और पुत्रों के साथ राम की शरण में आया हूँ। तुरत राम को सूचित कीजिये कि मैं इस प्रकार आया हूँ।"

यह सुनकर, सुग्रीव, लक्ष्मण के साथ राम के पास गया। "कोई रावण का भाई विभीषण है। चार राक्षसों के साथ तुम्हारी शरण मांग रहा है। हमें सावधान रहना होगा। इन राक्षसों का विश्वास नहीं करना चाहिए। ये शूर हैं, अदृश्य हो सकते हैं। मायावी हैं। इसमें सन्देह

हूँ। तुम सुख से रहो।" वह वहाँ से निकल गया और उस जगह पहुँचा, जहाँ राम, लक्ष्मण और वानर सेना थी।

हथियार लेकर, आकाश मार्ग से विभीषण और उसके साथ के चार राक्षसों को आता सब वानरों ने देखा। सुग्रीव ने उसको देखा, एक क्षण सोचा, फिर हनुमान आदि से कहा—"ये राक्षस, अवश्य हमें मारने के लिए ही इस तरफ़ आ रहे हैं। देखो तो।"

तुरत वानर प्रमुखों ने पेड़ और पत्थर लेकर कहा—"इन दुष्टों को अभी मारकर नीचे
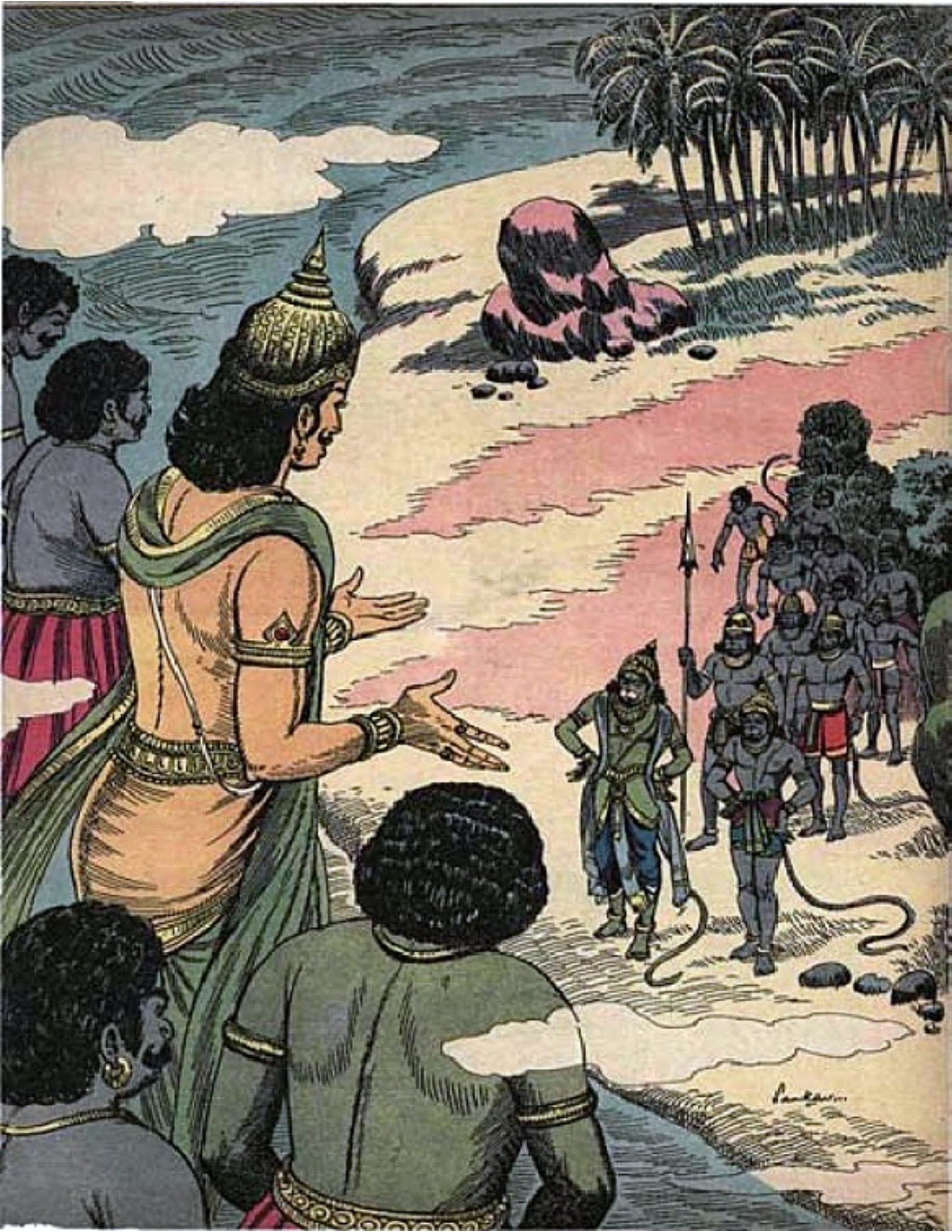
नहीं है कि यह रावण का गुप्तचर हमारा विश्वास पाकर यह हम में फूट पैदा करेगा, नहीं तो मौका पाकर वह स्वयं ही हम पर वार करेगा। हम शत्रु के भाई का कैसे विश्वास कर सकते हैं! हो सकता है कि रावण ने स्वयं इसे भेजा हो। इसे और इसके साथियों को तुरत मार देना अच्छा है।" उन्होंने कहा।

राम ने सुग्रीव की बात सुनकर, हनुमान आदि वानर प्रमुखों की ओर मुड़कर कहा—"सुग्रीव ने जो सोच विचार करके कहा है वह तुमने सुन ही लिया है। इसी प्रकार आप सब भी अपनी अपनी सलाह दीजिये।"

पहिले यह अच्छी तरह जानने के बाद कि विभीषण कैसा है उसके बाद ही यह निश्चित किया जाये कि उसका विश्वास किया जाये, या न किया जाये। शरभ ने कहा कि उसको परखने के लिए एक गुप्तचर भेजा जाये। जाम्बवन्त ने कहा कि विभीषण का यहाँ आना ही सन्देहास्पद है।

हनुमान ने सबकी सलाहें ठुकरायीं। "विभीषण की अच्छाई बुराई कैसे जानी जाये! जो समीप हो उसके पास कैसे गुप्तचर भेजे जायें! इस समय यदि विभीषण यहाँ आ रहा है तो उसके आने में अवश्य कोई कारण है। वह जानता है कि रावण दुष्ट है। वह यह भी जानता है कि राम ने वालि को मार कर सुग्रीव का राज्याभिषेक किया था। वह राज्य के लोभ में, सचमुच अपने भाई को छोड़कर यहाँ आया है। ऐसा मुझे लग रहा है। बाद में आपकी इच्छा।" हनुमान ने राम से कहा।

नेहरू की कथा

ढाई सौ साल पहिले, जब दिल्ली में मुगलों का सूर्य अस्त हो रहा था काश्मीर में राजकौल नाम के एक व्यक्ति रहा करते थे। वह काश्मीर में संस्कृत और फारसी के पंडित के रूप में प्रसिद्ध थे।

औरन्गजेब की मृत्यु के बाद, फरूख सियर, दिल्ली की गद्दी पर आया। जब वह काश्मीर गया तो उसने राजकौल के पान्डित्य के बारे में सुना। शायद उसी के प्रोत्साहन पर ही १७१६ के आस पास, राजकौल सकुटुम्ब काश्मीर छोड़ कर, दिल्ली में आकर बस गये।

दिल्ली में, राजकौल ने एक जागीर पाई और नहर के किनारे एक घर भी बनवा लिया। इस नहर के कारण ही उनके नाम के पीछे नेहरू जुड़ा। वंश नाम जो कौल था, कौल-नेहरू हो गया। फिर कौल निकल गया और नेहरू रह गया।

दिन खराब थे। नेहरू के परिवार को बहुत से कष्ट झेलने पड़े। उनकी जागीर खतम हो गई। दिल्ली बादशाह के दरबार में, जो हीन स्थिति में था, लक्ष्मीनारायण नेहरू ने, "सरकार कम्पनी" की तरफ से वकील का काम किया। वे ही जवाहरलाल नेहरू के परदादा थे। जवाहरलाल नेहरू के दादा, गंगाधर नेहरू, १८५७ के विप्लव के पूर्व, कुछ दिन दिल्ली के कोतवाल थे। १८६१ में, जब वे ३४ वर्ष के ही थे कि उनकी मृत्यु हो गई।
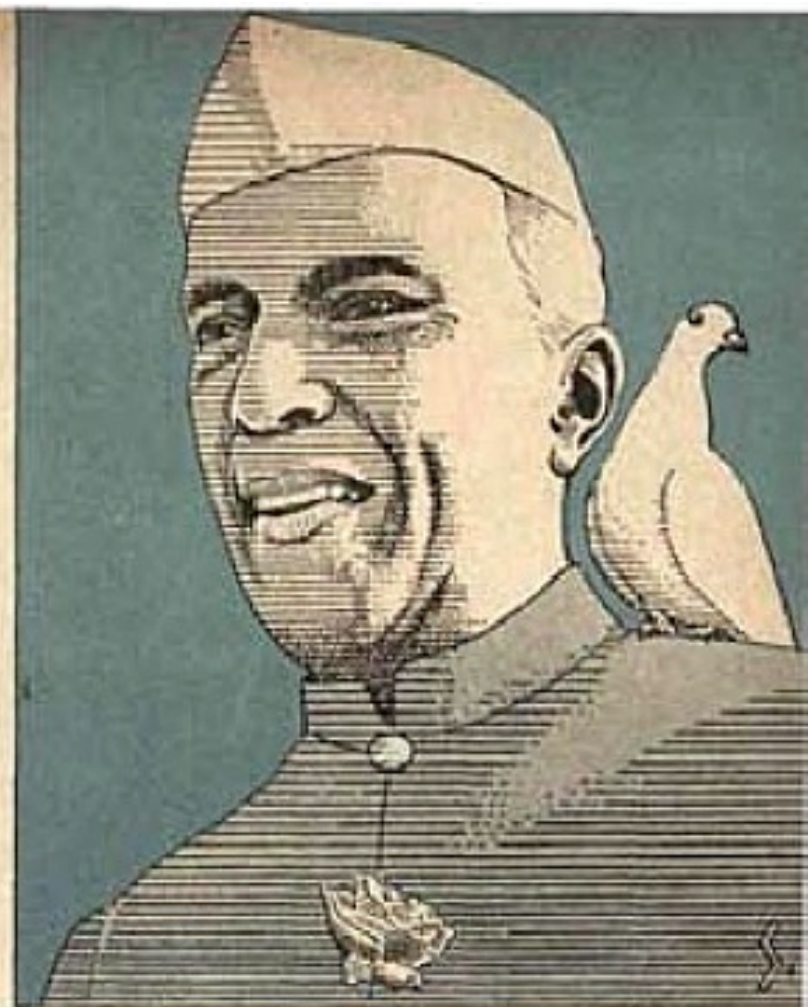
१८५७ के विप्लव में नेहरू कुटुम्ब का दिल्ली से सम्बन्ध जाता रहा। नेहरू
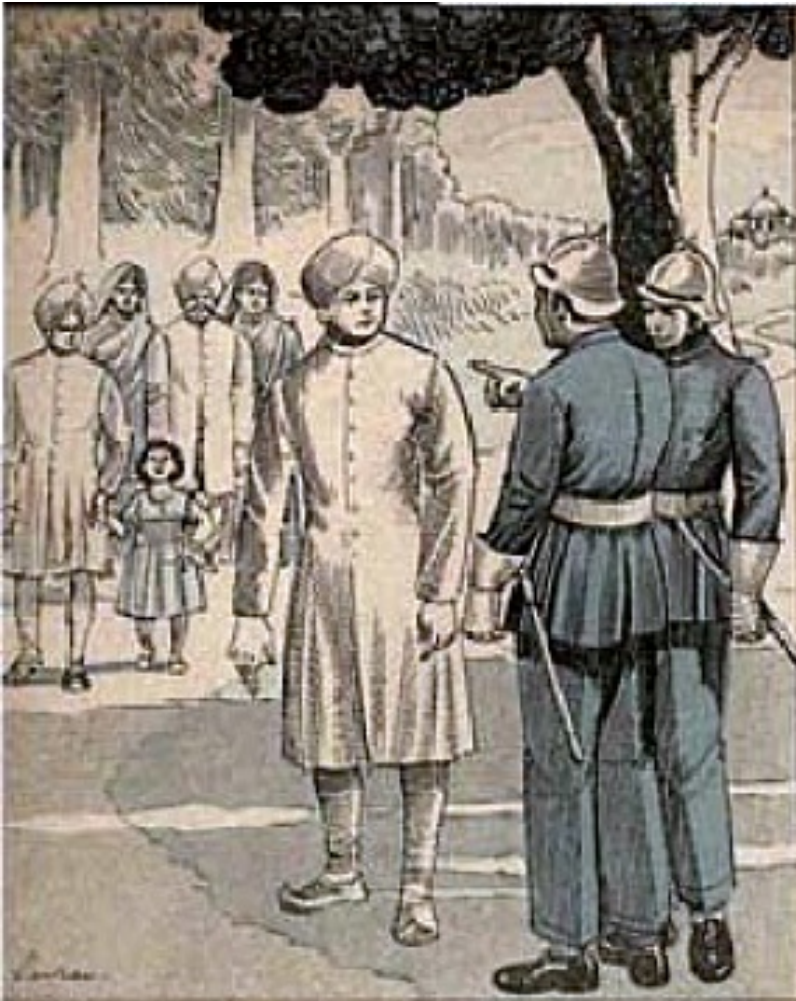
परिवार करीब करीब अपना सर्वस्व खो बैठा। वे असंख्य शरणार्थियों के साथ दिल्ली छोड़कर आगरा गये।

तब मोतीलाल नेहरू पैदा नहीं हुए थे। परन्तु तब उनके दोनों बड़े भाई जवान थे और उनको थोड़ा बहुत अंग्रेज़ी का ज्ञान भी था। इस अंग्रेज़ी के ज्ञान ने ही उनके परिवार की घोर विपत्ति में रक्षा की।

मोतीलाल के बड़े भाई का नाम बंशीधर नेहरू था और उनसे छोटे भाई का नाम नन्दलाल नेहरू था। ये नन्दलाल कुछ बन्धुओं के साथ दिल्ली से जा रहे थे। उनमें उनकी बहन भी थी। वह तब लड़की ही थी और बड़ी गोरी थी।

नन्दलाल आदि को, रास्ते में कुछ ब्रिटिश सैनिक मिले। उस लड़की को देखकर उन्होंने सोचा कि वह अंग्रेज़ थी। उन्होंने नन्दलाल पर इल्ज़ाम लगाया कि वह उसको उड़ा ले जा रहा था। उन दिनों सुनवाई और सज़ा, सब मिन्टों में ही हो जाती थी। नन्दलाल ने जब उनसे अंग्रेज़ी में बातचीत शुरु की, तो कुछ समय मिल गया, इतने में कोई जान पहिचान का आदमी उस तरफ़ आया—उसने उनकी रक्षा की। नहीं तो नन्दलाल और उनके परिवार के शव, उस दिन किसी पेड़ से लटक रहे होते।

नेहरू कुछ साल आगरा में ही रहे। ६, मई १८६१ को अपने पिता के मरने के तीन महीने बाद, मोतीलाल नेहरू आगरा में पैदा हुए। उसी समय बंगाल में महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगौर का भी जन्म होना कुछ विचित्र-सा है।

मोतीलाल से चूँकि उनके भाई बहुत बड़े थे इसलिए परिवार के भरण पोषण का भार उन पर पड़ा। बंशीधर, जल्दी

ही ब्रिटिश सरकार के न्यायशाखा में प्रविष्ट हुए और अक्सर उनकी बदली होती रहती इसलिए वे परिवार से दूर ही रहते।

नन्दलाल ने राजपूताना के खेत्री रियासत में, दिवान के तौर पर दस साल काम किया। उसके बाद, उन्होंने "कानून" पढ़ा और आगरा में ही वकील होकर प्रेक्टीस करने लगे।

मोतीलाल इस भाई की देखरेख में ही बड़े हुए। इन दोनों में न केवल भाई भाई का ही सम्बन्ध था, परन्तु पिता पुत्र का सम्बन्ध-सा भी था।

अलहाबाद में हाईकोर्ट बना। नन्दलाल अपने परिवार को आगरा से अलहाबाद ले गये और तब से नेहरू अलहाबाद में ही रहने लगे।

नन्दलाल नेहरू की प्रेक्टीस इतनी बढ़ी कि वे वहाँ के वकीलों में मुख्य माने जाने लगे। इस बीच मोतीलाल ने अपनी स्कूल और कोलेज शिक्षा कानपुर और अलहाबाद नगरों में पाई। दस वर्ष तक उन्होंने केवल फारसी और अरबी ही सीखी। उसके बाद ही उन्होंने अंग्रेजी सीखी, परन्तु उस छोटी उम्र में ही वे फारसी में पंडित थे, अरबी भी जानते थे। इसलिए बड़े लोग भी उनका सम्मान करते थे। परन्तु वे स्कूल और कोलेज की शिक्षा में उतने प्रवीण नहीं थे। उनको शिक्षा की अपेक्षा, व्यायाम और खेल कूद से अधिक आसक्ति थी। वे बी. ए. परीक्षा देने गये तो केवल एक पर्चा ही लिखा, यह सोच कि वे फेल हो जायेंगे, उन्होंने और पर्चे लिखे ही नहीं।
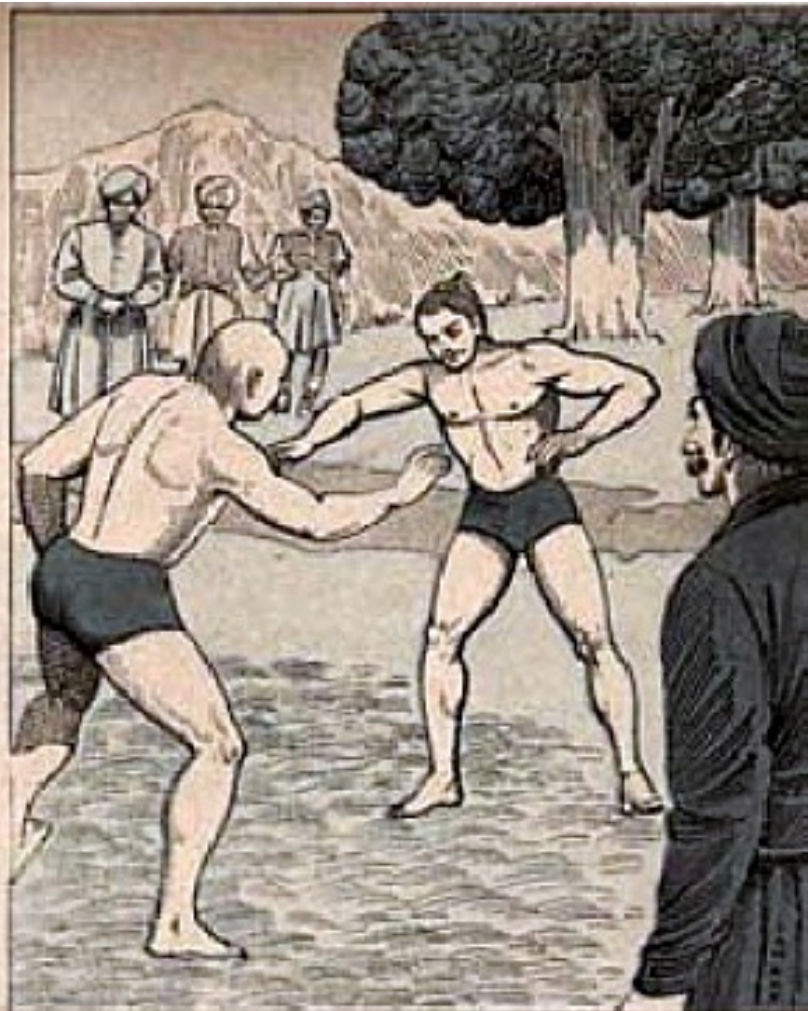
मोतीलाल जी ने भी भाई की तरह वकील बनने का निश्चय किया। हाईकोर्ट की वकील की परीक्षा में बैठे और प्रथम

श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। उन्होंने कानपुर में तीन साल एप्रेन्टिस शिप की, फिर अल्हाबाद हाईकोर्ट में प्रेक्टीस करने लगे। उसी समय नन्दलाल नेहरू यकायक गुज़र गये। ये भाई, पिता सदृश थे, उनकी मृत्यु का दुःख तो था ही, मोतीलाल नेहरू पर परिवार के भरण पोषण का भार भी आ पड़ा। इस जिम्मेवारी को निभाने के लिए आवश्यक था कि मेहनत से काम किया जाये। सिवाय पेशे के उनको कोई और ख्याल था ही नहीं। भाई की सारी प्रेक्टीस करीब करीब उनको ही मिली। उनका काम बढ़ा और आय भी बढ़ी। क्योंकि छुटपन में ही सफलता मिल गई थी, इसलिए वे शायद अपने पेशे के गुलाम-से हो गये। बिना किसी छुट्टी-तफ़रीह के वे काम करते गये।

उसी समय नेशनल कोन्ग्रेस मध्यम वर्ग के शिक्षण समाज को आकर्षित करने लगा था। वे कान्ग्रेस के कुछ अधिवेशनों में शामिल हुए। उसके कुछ सिद्धान्तों का उन्होंने आमोदन भी किया, पर उनकी दिलचस्पी यहीं तक सीमित रही। उनका राजनीति में खास दखल न था। यही नहीं, उन्होंने उन दिनों के आन्दोलनों में भी भाग न लेना चाहा।

और अंग्रेज़ों को वे सम्मान की दृष्टि से भी देखते थे, यद्यपि वे देश पर अभिमान करते थे, पर उनका ख्याल था, यदि उनका देश अवनत था, तो देशवासी ही इसके लिए जिम्मेवार थे। बिना कुछ किये, तकरीरें झाड़नेवाले राजनीतिज्ञों को वे पसन्द न करते थे। उनका विश्वास था, बेकार लोग ही राजनीति में उतरते थे।

<u>संसार के आश्चर्य :</u>

३२. अमेरिका पार्लियामेन्ट भवन

युनायेटेड स्टेटस आफ़ अमेरिका (यू. एस. ए.) की राजधानी वाशिंगटन नगर है। उस नगर में स्थित पार्लियामेन्ट भवन, संसार के सुन्दर भवनों में एक है। भवन के ऊपर २६८ फीट ऊँचा गुम्बज है। इसको सफ़ेद रंग के संगमरमर के पत्थरों से बनाया गया है। इसको बनाने के लिए १६० लाख डालर खर्च किये गये हैं।

Photo by Anant Desai
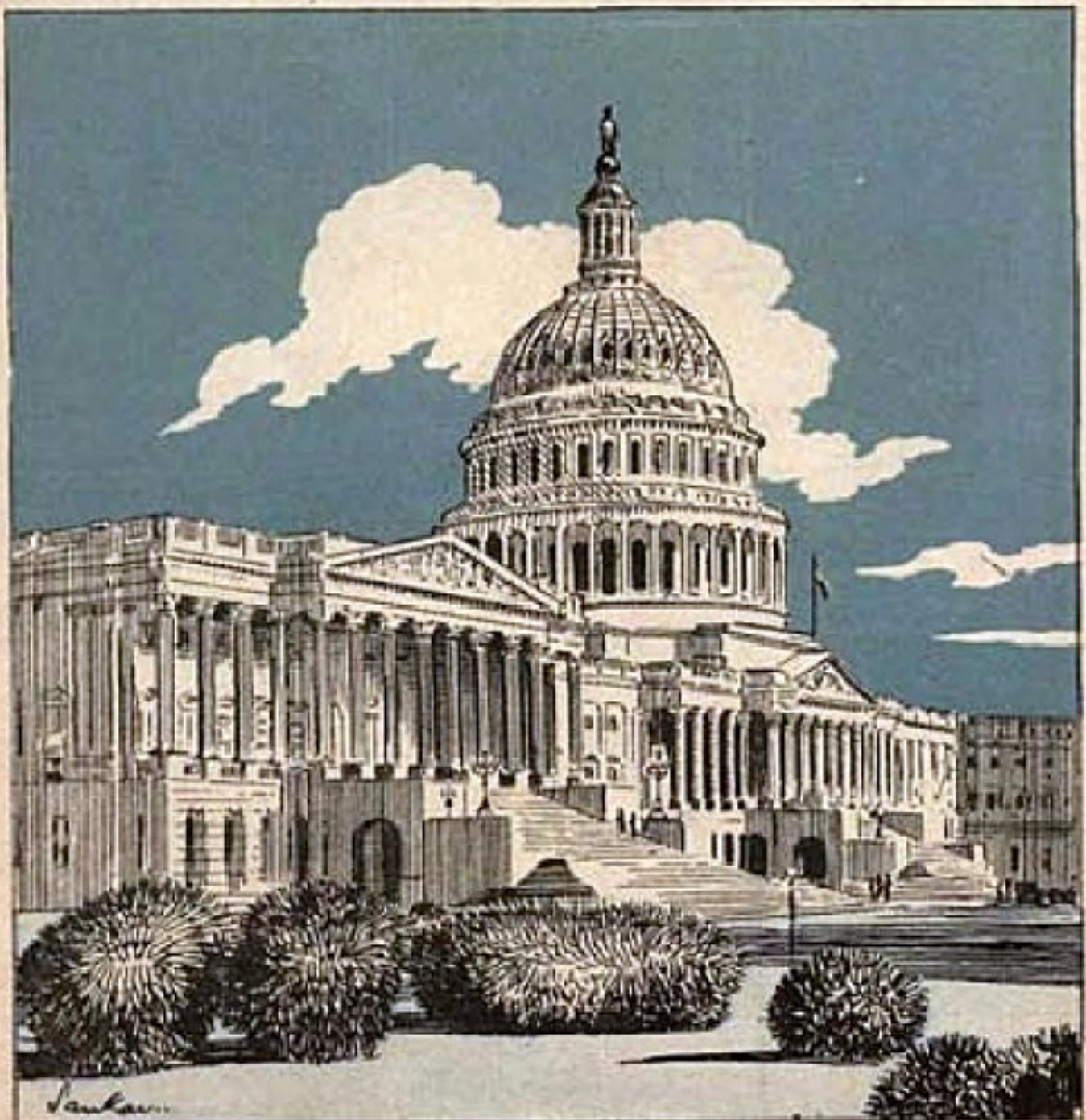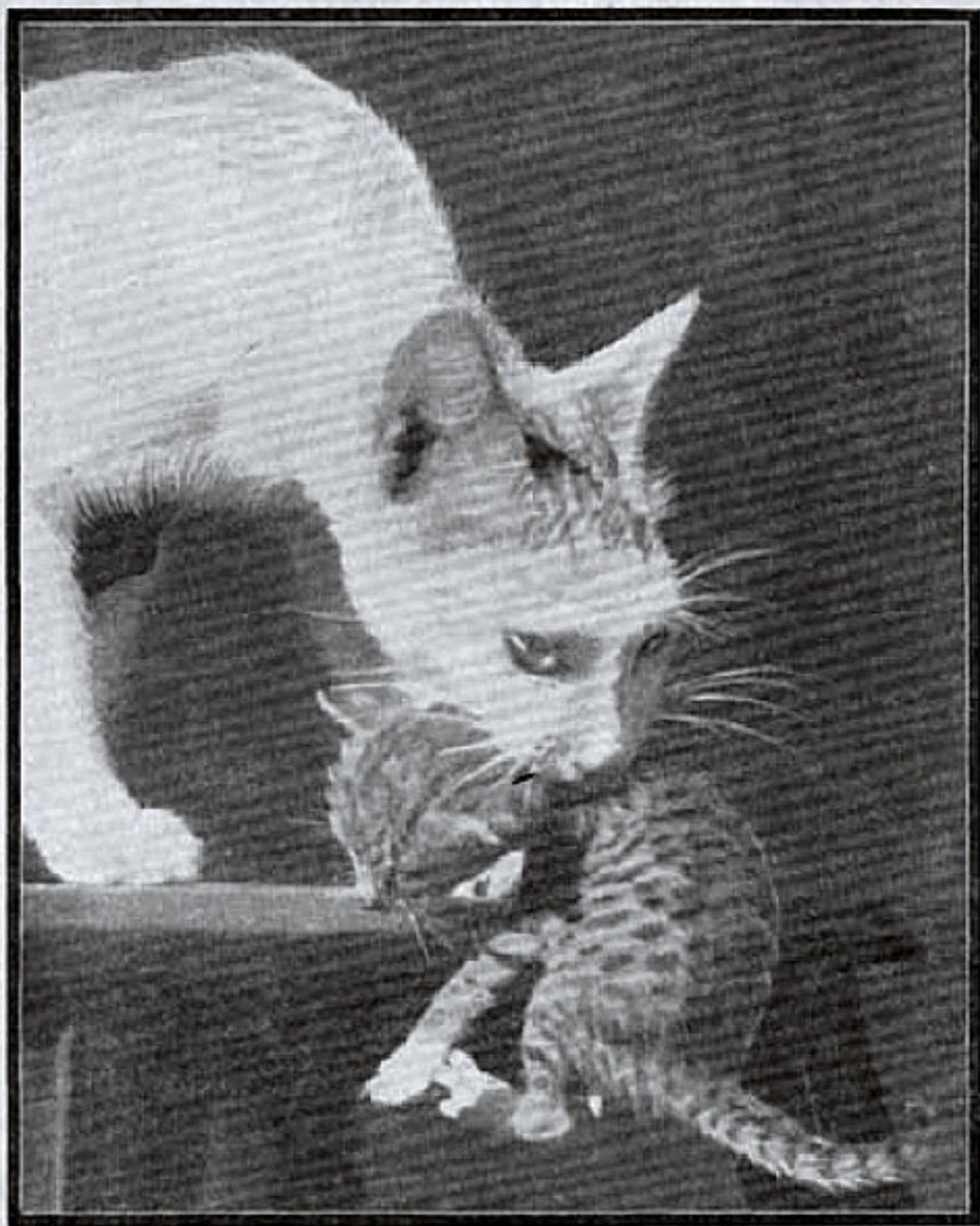
पुरस्कृत परिचयोक्ति

माँ का प्यार है सहारा !

प्रेषक: वसन्तकुमार भगढ-सागर

Photo by Bhalchandra Kadne
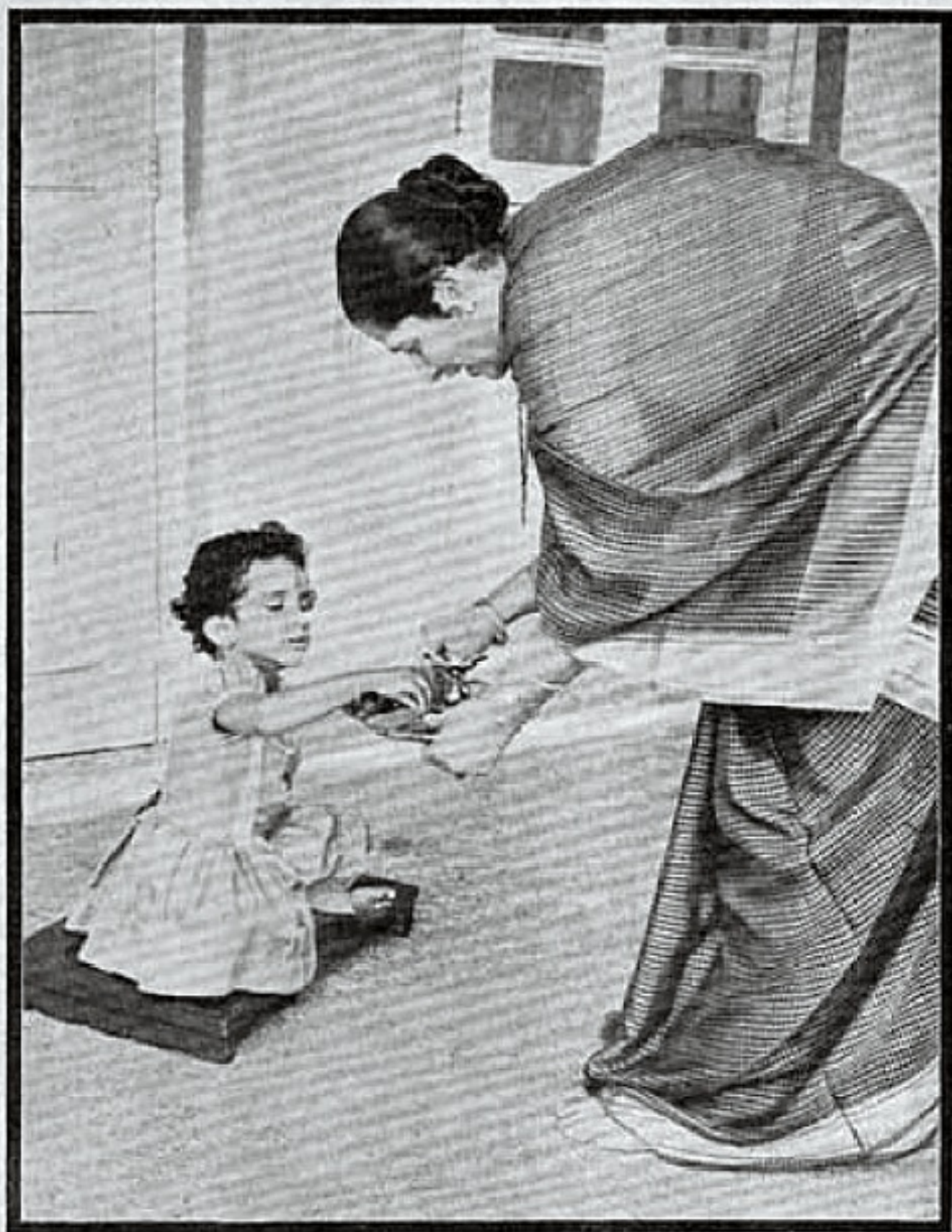
पुरस्कृत
परिचयोक्ति

पूजा का प्रसाद है तुम्हारा !!

प्रेषक :
बसन्तकुमार धगट-सागर

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

अक्टूबर १९६४ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें !

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिखकर निम्नलिखित पते पर तारीख ७ अगस्त १९६४ के अन्दर भेजनी चाहिए।

फ़ोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन,
वडपलनी, मद्रास-२६

अगस्त – प्रतियोगिता – फल

अगस्त के फ़ोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं।
इनके प्रेषक को १० रुपये का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो: **माँ का प्यार है सहारा !**
दूसरा फ़ोटो: **पूजा का प्रसाद है तुम्हारा !!**

प्रेषक: **वसन्तकुमार धगट,**
सराफ बाज़ार, सागर (म. प्र.)

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Private Ltd., and Published by B. VENUGOPAL REDDI for Sarada Binding Works, 2 & 3, Arcot Road, Madras-26. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'